अंक संख्या ३, अक्टूबर २०२०

अभिव्यक्ति

'चिन्हारी: द यंग इंडिया'
समाचार पत्र

महामारी के दौर में

'आत्मनिर्भरता'

के

'आदिवासी'

मायने

सन्देश

हम छत्तीसगढ़ की नव युवतियाँ हैं। हमारे संगठन का नाम है – चिन्हारी: द यंग इंडिया (www.chinhari.co.in)। हमारी चाहत है – सपने देख पाने की हिम्मत। ऐसे सपने जो आत्मनिर्भर हों और आत्मनिर्भरता के हों। हमारी सोच है कि हम इन सपनो के माध्यम से अपने घर, गांव, राज्य और देश में एक सुन्दर बदलाव ला सकें। एक बदलाव जिससे इंसान का इंसान से, इंसान का पर्यावरण से, पुरुष का महिला से और 'विकास' का लोगों से एक गैर शोषक रिश्ता बन पाए। यह संगठन हमें आशा देता है। हमें महसूस कराता है कि हम अकेले नहीं हैं, कि हम कुछ बड़ा कर सकते हैं, कि हम अपना दुःख और सुख बाँट सकते हैं। हम यह नहीं कहना चाहते कि संगठन बनाना, अपने मन कि बात करना, यह सन्देश लिखना हमारे लिए आसान रहा। मगर हम हर दिन संगठित होने के लिए मेहनत करते हैं, नई सोच का सहारा लेते हैं। हमने इस संघर्ष से समझा है कि किसी भी सुन्दर चीज़ को सुन्दर बनाये रखने के लिए हर दिन मेहनत लगती है। और हम अपने आप को, अपने घर, गांव और देश को इसी प्रकार सुन्दर बना कर रखना चाहते हैं। हम वादा करते हैं कि हम हर दिन इसके लिए मेहनत करेंगे! और हमारे साथ जुड़ने के लिए आपका इंतज़ार करते रहेंगे।

महामारियों की परिस्थितियों में उभरते 'आत्मनिर्भरता' के मायने

संपादक की कलम से

यह साल हमारे देश के लिए या यूं कहें कि पूरे विश्व भर के हमारे मानवीय समुदाय के लिए, चुनौतियों से पूर्ण रहा है। कोरोना नामक वायरस हमारे सामने है, और हमे अपनी सीमाओं का अहसास दिला रहा है। 'विकास' की चिलचिलाहट में चमकता हमारा मानवीय मनोबल जो कि विशाल से अति विशाल हो चला था, अभी चोटिल बैठा है। आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने हमे 'महामानव' बना अजेय होने का जो विश्वास दिला दिया था, वह अब किसी भ्रम जैसा मालूम पड़ने लगा है। प्रकृति पर जय पाने का मानवीय दम्भ कुछ बिखरा हुआ महसूस हो रहा है। 'विकास' का वो सपना जो जीवन सवार देने वाला वादा था, अब टूटा हुआ धागा लगता है। महामारी के इस दौर में उत्पीडनाओं की जो कहानियाँ सुनी तो खुद के सिर्फ मानव होने का एहसास हुआ। ऐसा मानव जो प्रकृति की अनगिनत कृतियों और प्रजातियों में से एक है। ऐसा मानव जो किसी 'स्वयं' में नहीं बसता, सिर्फ 'रिश्तों' में बसता है। रिश्तों में बनता और बिगड़ता रहता है। यह समझ आया कि हम प्रकृति से श्रेष्ठ नहीं अपितु उसका एक हिस्सा हैं। प्राकृतिक संरचना जो कि एक परिस्थिति है, हम उसमे स्थित एक किरदार हैं। जितना हवाले हम परिस्थिति के हैं, उतना ही यह हमारे हवाले है। हम किसी मुकाबले का हिस्सा नहीं हैं। यह कोई रणभूमि नहीं हैं। ना ही है यह जय और पराजय का खेल। मानवीय जीवन एक संवाद है, और यह संवाद है हमारे और हमारी परिस्थितियों के बीच। श्रेष्ठता कोई वस्तु नहीं है। ना ही हम उसे पाने की किसी दौड़ में हैं। छल शायद हमारी भाषा में ही है। किसी के श्रेष्ठ होने के लिए किसी को तो निम्न होना ही होगा। वरना श्रेष्ठ होने के हमारे मायने क्या आकृति पाएंगे। श्रेष्ठ होने की हमारी चाह, हमे एक प्रतिस्पर्धा में ला खड़ा करती है। फिर हम अपनों से और अपने आप से लड़ते हैं, भ्रमित हो एक अमिट तृष्णा को वास प्रदान करते हैं। ऐसे में मेरा सवाल यही है कि इस गंभीर समय में क्या हम अपना दृष्टिकोण बदल सकते हैं?

महामारी, एक वह है जो वायरस से फैली है और एक वह है जो मानवीय 'स्वयं' से फैली है। पहले वाली महामारी की चोट सबको दिख गयी, जल्दी से दिख गयी। जो ना दिख सकी वह है दूसरी वाली महामारी, जो एक लम्बे समय से प्रकृति और उसके 'संग' रिश्ते में बंधे मानव (आदिवासी) को चोटिल कर रही है। आदिवासी समुदाय में बसे अपने कुछ आदिवासी साथियों के साथ बिताये हुए समय से मैंने यही सीखा कि आदिवासी वह है जो प्रकृति से अपने जुड़ाव को महसूस कर सके। आदिवासी वह है जो प्रकृति संग, स्त्री संग एवं किसी भी जीव संग एक न्यायसंगत रिश्ते को गढ़ता है। और इस प्रक्रिया में खुद को भी बनाता है। इसलिए, शायद, आदिवासी कोई होता नहीं है अपितु बनता है। ऐसे में जन्म और जात से कोई आदिवासी नहीं, खून और रंग से कोई आदिवासी नहीं, आदिवासी जंगल से है, जंगल के साथ जुड़े रिश्ते से है। वह किरदार जो न्यायसंगत रिश्तों से बन कर उभरता है, उस किरदार के स्वरूप का नाम आदिवासी है। वह स्वरूप जो हमेशा से था और बार बार खुद को बनाता रहता है। शायद आज की ज़रुरत यही है कि हम सभी इस किरदार को अपनाएं। पर आधुनिक परिस्थितियों से उभरे 'स्वयं' में, हमने अपने भीतर की 'आदिवासी' संभावना को नकारा है। इस नकारने की प्रक्रिया को हमने नाम दिया 'विकास'। प्रकृति को नकार, फ़ैक्टरियों का निर्माण हुआ 'विकास'। खेत की मिट्टी में रसायन का प्रयोग हुआ 'विकास'। जैविक विविधता को नकार, एकल खेती का अभ्यास हुआ 'विकास'। तृष्णा से उपजी 'अधिक' की भूख का नाम हुआ 'विकास'। वायरस वाली महामारी ने हमारे शरीर को संक्रमित किया है। पर इस दूसरी वाली महामारी ने हमारे किरदार को बीमार किया है, जिसकी खबर अभी तक लिखी नहीं जा रही है। जिसकी खबर मिली खूब अखबारों में वह है वायरस वाली महामारी। जिसके इलाज में 'आत्मनिर्भरता' का शोर अचानक से उठ खड़ा हुआ। जो ग्रामीण क्षेत्र पहले, कतारबद्ध, 'स्मार्ट सिटी' बनने के रास्ते ताक रहे थे, अब उनका इलाज 'आत्मनिर्भरता' में पाया जा रहा है। मर्ज़ नया है तो दवाई भी हो कोई नई। पर आएगी कहाँ से 'आत्मनिर्भरता'? और क्या परिभाषा है इसकी? क्या यह आत्मनिर्भरता, ग्रामीण क्षेत्रों में, 'मौद्रिक वितरण' से आएगी? क्या इस आत्मनिर्भरता का मतलब 'एकलवाद' या 'व्यक्तिवाद' से जुड़ा है? या हमें इसे 'परस्पर निर्भरता' की रौशनी में देखना चाहिए? क्या आत्मनिर्भरता 'सामूहिक' भी हो सकती है? क्या आत्मनिर्भरता 'आदिवासी' होने में हो सकती है?

इन महामारियों के साथ आई मानवीय एवं जीवनीय उत्पीडनाओं को हम क्या प्रतिक्रिया प्रदान कर सकते हैं? इन मुश्किल परिस्थितियों में हम अपने किरदार को किस तरह गढ़ सकते हैं और अपने गठित किरदार से किस तरह अपनी परिस्तिथियों के साथ संवाद रच सकते हैं? हमारा मानवीय सपना क्या हो सकता है?

आत्मनिर्भरता के हमारे क्या मायने हैं? कब और कैसे कहा जा सकता है कि हम आत्मनिर्भर हैं? इन्ही सवालों के साथ इस पत्रिका में 'चिन्हारी' से मेरा संवाद बना। धमतरी जिले के गाँवों में बसे नव युवक एवं युवतियों का संगठन है 'चिन्हारी', सपना है इनका - भारत का नव निर्माण । सपना है इनका कि रिश्ता सुधर जाए – इंसान का इंसान से, इंसान का पर्यावरण से, पुरुष का महिला से, शहर का गाँव से, आधुनिकता का आदिवासी से, अतीत का भविष्य से और 'विकास' का आदिवासी से। 'विकास' की महामारी हो या हो वायरस वाली महामारी, चिन्हारी ने 'आत्मनिर्भरता' के अपने मायने बुने हैं। सामूहिक स्तर पर, आत्मनिर्भरता गढ़ने की कोशिश में देसी बीजों से जैविक खेती करती हैं। 'चरझनिया घर' (गाँव स्तर पर बनाया हुआ देसी बीजों का कोष) की कहानियाँ लिखती हैं। एक ऐसा कोष जो अच्छे और बुरे वक़्त में गाँव का पेट भर सके, उसे आत्मनिर्भर बनाए रख सके। जंगल संग बुने अपने रिश्तों के बारे में बताती हैं। इस पत्रिका के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति दे रही हैं। कोविड वायरस के कारण किये गए 'लॉकडाउन' के चलते, ग्रामीण जीवन में आए संघर्षों की कुछ कहानियाँ हैं। इन कहानियों में प्रवासी मजदूरों के साथ हुए साक्षात्कार (टेलीफोनिक एवं व्यक्तिगत रूप से संचालित) भी सम्मिलित हैं। लॉकडाउन के समय संगठन के सदस्यों ने रचनात्मकता की ओर रुख किया जिसे उनके द्वारा निर्मित रचनाओं (चित्र एवं कहानियाँ) के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

संगठन के सदस्यों के साथ, इस पत्रिका के लिए, अन्य ग्रामीण संगठनों एवं संस्थाओं से भी लेख आएं हैं जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में, अपने अपने तरीकों से, 'आत्मनिर्भरता' खोज रहे हैं। जैसे कि झारखंड में बसे 'अयंग राजी', बिहार में बसे 'लाहन्ति क्लब', कांकेर में स्थित 'सहभागी समाज सेवी संस्थान' एवं गुजरात के जिला तापी की कुछ महिलाओं के अनुभवों की कहानियाँ प्रस्तुत हैं। मध्य भारत के जंगलों में पाए जाने वाले महुआ के फूलों से प्रक्षालक (sanitizer) एवं मास्क बनाने की कहानियों को भी पत्रिका में सम्मिलित किया गया है। इस पत्रिका में, 'कल्पवृक्ष' के संस्थापक एवं पर्यावरणविद् (environmentalist) डॉ. आशीष कोठरी जी का लेख 'अतिथि द्वारा योगदान' के रूप में प्रस्तुत है जिसमे ग्रामीण भारत से उभर रहे 'आत्मनिर्भरता' के उदाहरण प्रस्तुत हैं। इस श्रेणी में कांकेर के स्थानीय युवा तेजेन्द्र पिद्दा द्वारा 'गाँव बनऊमी' नामक आदिवासी रीति का विवरण है जिसके माध्यम से लेखक अपनी सामाजिक संस्कृति से परिचित करवाते हैं। 'गाँव बनऊमी' का अर्थ है गाँव बनाना एवं गाँव बाँधना। आदिवासी समाज में यह एक वार्षिक महोत्सव जैसा है, जब गाँव के लोग एकत्रित हो अपने गाँव की सीमा रेखा को बाँधते हैं। दार्शनिक स्तर पर इस 'बाँधने' की प्रक्रिया के कई मायने हो सकते हैं, पर किन्ही मायनों में यह मौक़ा गाँव को एक परिवार एवं एक समुदाय के रूप में देखने जैसा भी है। कहने को गाँव में हर परिवार एक जैसा नहीं, पर अपने गाँव को 'बाँधने' के लिए सभी परिवार एक साथ आते हैं। इस तरह की रीतियाँ आत्मनिर्भरता में एकलवाद की जगह सामूहिकता या परस्पर निर्भरता की परिकल्पना प्रदान करती हैं। वह समाज जिसकी आत्मा का किरदार ही सामूहिक हो, वहाँ आत्मनिर्भरता तक पहुंचने का माध्यम एकलवाद नहीं, बल्कि अंतर्निर्भरता ही हो सकती है।

कहने को हम सूचना युग के मानव हैं पर आज भी शहरों से दूर बसे आदिवासी की आवाज़ मुख्यधारा मीडिया में सुनने को नहीं मिलती। शायद इसलिए भी मुख्यधारा में आदिवासी विचारधाराओं को जगह नहीं मिली है। ऐसे में चिन्हारी द्वारा प्रकाशित इस समाचार पत्र की महत्तता ख़ास है। चिन्हारी की नव युवतियां अपने कलम से अपनी कहानी लिख रही हैं। यह समाचार पत्र और इसमे सम्मिलित कहानियाँ, आदिवासी प्रतिनिधित्व (representation) की पॉलिटिक्स पर एक ख़ास प्रतिक्रया है। मीडिया के इस दौर में जहाँ समाचार और बकवाद के बीच का फर्क दिन प्रतिदिन मुश्किल होता जा रहा है, इस तरह के समाचार पत्र की ज़रुरत और भी बढ़ जाती है।

इस समाचार पत्र की लम्बाई को देखते हुए इसे दो भागों में बाँटा गया है। सामग्री पृष्ठ में इस विभाजन की योजना प्रस्तुत है। अपने पाठकों तक महामारी से संबंधित 'सही' जानकारी पहुंचाने हेतु, पहले भाग के अंत में, डॉ. सुमंतो चटर्जी संग साक्षात्कार प्रस्तुत है। इस साक्षात्कार के माध्यम से डॉ. चटर्जी ने महामारी से संबंधित भ्रांतियों पर भी प्रकाश डाला है। महामारी के इस दौर में सही जानकारी ही बचाव है। मुझे आशा है कि इस पत्रिका के माध्यम से हम अपने पाठकों को महामारियों की परिस्थितियों में उभरते 'आत्मनिर्भरता' के (आदिवासी) मायनों से रूबरू करवा सकेंगे। एक बेहतर समय की कामना के साथ अपने पाठकों को मैं यह समाचार पत्र प्रस्तुत कर रही हूँ।

प्रवीणा महला - उत्तर बस्तर कांकेर में अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली द्वारा संचालित परियोजना का हिस्सा हैं। आदिवासी क्षेत्रों में बसी सभ्यताओं का प्रकृति से रिश्ता समझने हेतु शोध कार्य कर रही हैं।

चित्रकार : कविता यादव

सामग्री पृष्ठ

१. महामारी में गाँवः गाँव में महामारी

- महामारी के दौरान बदलता मेरा गाँव - कविता
- कोरोना के कारण - हेमा
- तालाबंदी के मायने - चिन्हारी के सदस्य

२. महामारी के दौर में घर लौटते प्रवासी

- टेलीफ़ोन पर चर्चाः एक प्रवासी के अनुभवों की कहानी - प्रवीना
- कोरोना के दौरान एक प्रवासी मजदूर से चर्चा - अनुभा

३. एक रास्ता रचनात्मकता की ओरः महामारी के वक़्त में कला की खोज

- अतरंगी गुलाबः गुलाब संग जीवन में रंग - पूजा
- गुलाबों संग खिलते रिश्तों की उमंग - इमरान
- मनचलों की मस्तीः रिश्तों के माध्यम से अभिव्यक्ति - रेणुका

भाग १ - शेहेरों में बनाये गए चित्रों पे चिन्हारी के सदस्यों प्रतिक्रिया - कविता

भाग २ - चिन्हारी के सदस्यों द्वारा बनाये चित्र पर प्रतिक्रिया - अर्पित ओर सवी

४. अतिथि द्वारा योगदान

- संकट से निकलने की राह - आशीष कोठारी
- मेडिकल विशेषज्ञ संग महामारी से सम्बंधित साक्षात्कार

५. अभिस्वीकृति

'महामारी में गाँव' : 'गाँव में महामारी'

मार्च के महीने में, राष्ट्रीय स्तर पर, घोषित 'लॉक डाउन' (तालाबंदी) अधिकतर लोगों के लिए बहुत अप्रत्याशित एवं आकस्मिक था। आधुनिक संसाधनों एवं सूचना के माध्यमों के उपलब्ध होते हुए भी लोगों तक महामारी एवं तालाबंदी से सम्बंधित सही सूचना पहुंचने में कठिनाइयाँ रही। हाल ही के इतिहास में इस तरह की महामारी का कोई जीता जागता उद्धरण भी नहीं देखा था तो इस आपदा एवं इसके कारण हुई तालाबंदी के मायनों को समझने में लोगों को और भी समय लगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बसे लोगों के लिए यह ख़ास रूप से चुनौतीपूर्ण रहा। परन्तु इससे भी ज़्यादा अगर कुछ मुश्किल रहा तो वह था इन लोगों द्वारा अपने अनुभवों एवं संघर्षों को सही प्लेटफार्म तक पहुँचाना। प्रिंट एवं इलेकट्रोनिक मीडिया सभी स्तरों पर ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बंधित रिपोर्टिंग (समाचार प्रेषण) निराशाजनक रही। समाचार पत्र के इस पहले भाग के पहले हिस्से का नाम है 'महामारी में गाँव : गाँव में महामारी'। इस हिस्से में प्रस्तुत लेखों के द्वारा चिन्हारी की नव युवतियाँ (जो की धमतरी जिले के ब्लॉक नगरी की निवासी हैं) अपनी कहानी खुद कह रही हैं। अपने अपने गाँवों के अनुभवों का विवरण प्रस्तुत कर रही हैं। इस प्रस्तुतीकरण के माध्यम से वे महामारी के कारण हुए प्रभाव को व्यक्त कर रही हैं। यह बता रही हैं कि महामारी में गाँव को क्या हुआ और गाँव में महामारी को क्या हुआ। सूचना के इस आधुनिक युग में ग्रामीण क्षेत्रों को और वहाँ से उठ रही आवाज़ों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। महामारी के इस समय में यह विलेखन फिर से उजागर हुआ है (the absence is present through its own absence) जिसके उत्तर में निम्नलिखित लेख प्रस्तुत हैं।

महामारी के दौरान बदलता मेरा गाँव - कविता यादव

कोरोना के कारण - हेमा मंडावी

तालाबंदी के मायने - स्वर्णिमा कृति

महामारी के दौरान बदलता मेरा गाँव

कविता यादव

कहते हैं कि जब तक मेहनत नहीं करेंगे तब तक पेट नहीं पलेगा, या ऐसे कहलो कि जब तक काम नहीं करेंगे पैसे नहीं आयेंगे। मुझे इन सब बातों में पहले इतना विश्वास नहीं था पर कोरोना से हुए लॉकडाउन (तालाबंदी) की वजह से मुझे लगने लगा है कि ये सच है। जब देश मेंलॉकडाउन हुआ तब सभी जगह काम बंद हो गया। लॉकडाउन की वजह से मैंने अपने आसपास के जीवन में लोगों कोसंघर्ष करते हुए देखा है। ऐसा लगता है कि शहर हो या गाँव हर किसी को बहुत परेशानी होरही है। इस लॉकडाउन की वजह से सभी दुकाने एवं फैक्ट्रियां बंद हो गई हैं। गाँव के लोगों ने अपने खेतों में जो फसल उगाई थी, उन्हे लॉकडाउन की वजह से सही दाम भी नहीं मिल पाया। इस वजह से लोगों की आर्थिक स्थिति में नुकसान तो हुआ ही, पर साथ में एक मानसिक उदासीनता भी छा गयी। खेत के अलावा जंगल से मिलने वाले उपज – जैसे कि महुआ, हर्रा, बेहड़ा, इत्यादि इनका भी सही दाम नहीं मिला पाया। इस लॉकडाउन के समय में स्थानीय हाट और बाज़ार भी बंद रहे। वन सामग्री लेने वाले कोचिया व्यापारी से गाँव वालों का संबंध भी टूट गया जिसकी वजह से वे अपने वन उपजों को सही कीमत पर बेच नही पाए। इस लॉकडाउन में एक उम्मीद की किरण ज़रूर नजर आई। यह थी मनरेगा की योजना। इस योजना के चलते ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत लोगों को रोज़गार मिला। इस योजना के तहत पहले भी रोज़गार मिला करता था मगर लॉकडाउन का ध्यान रखते हुए सरकार ने हफ़्तों तक गाँव में लोगों को काम दिया। यह सरकार द्वारा गाँव वासियों के लिए मदद का एक ज़रूरी तरीका रहा है। साथ ही लॉकडाउन के दौरान सरकार ने राशन की दुकानों के माध्यम से निशुल्क राशन का वितरण किया। इससे लोगों को बहुत मदद हुई और यह भी लॉकडाउन के मुश्किल समय में सरकार द्वारा राहत का माध्यम रहा। पर वो कहते हैं ना कि सिक्के के दो पहलू होते हैं। जैसे कि नुकसान अपने साथ कुछ फायदे लाता है वैसे ही फ़ायदा अपने साथ कुछ नुक्सान भी लाता है। रोज़गार गारंटी की योजना से लोगों को काम तो मिला मगर सही समय पर मजदूरी का भुगतान नही मिल पाया। भुगतान मिलने में देरी भी शायद इस महामारी के कारण हुई होगी। गाँव के लोगों को कभी बैंक के चक्कर काटने पड़ते थे तो कभी सरपंच और रोज़गार सहायिका के घर के रास्ते नापने पड़ते थे। ऐसी स्थिति में मजदूरी का पैसा न मिलने का तनाव तो था ही साथ में संक्रमण की चिंता भी लगी रहती थी। पर फिर भी ये तो मानना पड़ेगा कि ग्रामीण जीवन में संघर्ष करने का एक अलग ही हौसला है। हर तरह की परेशानी भोगते हुए भी लोग उम्मीद नहीं छोड़ते। यह शायद इस वजह से है क्योंकि ज़्यादातर संघर्ष गाँव में हम साथ मिलकर ही करते हैं। और साथ मिलकर संघर्ष करने का मज़ा ही कुछ और है।

जो लोग पलायन के लिए दूसरे राज्य गए थे वे भी अब लौटकर आने लगे हैं। एक तरफ गाँव वालों में अपने सगे-साथियों से मिलने की ख़ुशी है, तो दूसरी तरफ उनके साथ बीमारी के आने का डर भी है। इसी डर के चलते, लौटे हुए सभी लोगों के घरों को सील किया गया, या फिर लोगों को संगरोध केंद्रों में पंद्रह दिनों तक भर्ती कर के रखा गया। स्थानीय सरकार ने इन संगरोध केंद्रों के संचालन की ज़िम्मेदारी ग्राम पंचायतों को सौंपी। स्थानीय संस्थाओं को अधिकार देने से योजनाएं सही रूप से संचालित तो होती हैं मगर लॉकडाउन के समय मेरे आस पास के कुछ ग्राम पंचायतों में मैंने देखा कि संगरोध केंद्र में लोगों को राशन पानी सही समय पर पहुँच नहीं पाया। यह पीड़ित और पंचायत दोनों के लिए ही दुःख की बात रही। ऐसे समय में ज़रूरत है कि हम सब मिलकर इस मुश्किल का सामना करें। गाँव और सरकार मिलकर यह लड़ाई लड़ें। और कुछ मायनों में हमारे क्षेत्र में ऐसा ही

हुआहै। यह समय गैर ज़िम्मेदारी का नहीं है एक दूसरे का साथ देने का समय है। अच्छी बात यह है कि इन सब मुश्किलों के बाद भी लोगों ने हिम्मत नहीं हारी है।

लॉकडाउन अब कुछ खुलने लगा है। अब धीरे-धीरे काम करने के विकल्प भी खुलने लगे हैं। इससे लोगों को थोड़ी राहत तो महसूस हो रही है। पर अभी भी यातायात के साधन ना होने की वजह से लोगों को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचने में बहुत दिक्कत हो रही है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए मैं चिन्हारी की तरफ से आग्रह करती हूँ कि आप सभी घर से ज्यादा न निकलें। अपनी सुरक्षा का भार खुद उठायें और इस महामारी से दूर रहें।

लेखक का परिचय – कविता यादव, ग्राम मारदपोटी, जिला धमतरी की रहने वाली हैं। वे अपने गाँव की पहली इंजीनियरिंग की छात्र हैं। वे क्रिस्चियन कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी में कंप्यूटर साइंस कीछात्र हैं। यह उनकी पढ़ाई का तीसरा साल है। कविता को पढ़ने और लिखने का शौक है – चिन्हारी के ब्लॉग के लिए भी लिखती रहती हैं। वे अपने परिवार और गाँव के लिए कुछ करना चाहती हैं। उनका यह सपना वे चिन्हारी के साथ मिलकर पूरा कर रही हैं। कविता २०१८ से चिन्हारी कि सदस्य रही हैं। यह लेख जून के महीने में लिखा गया था।

कोरोना के कारण

हेमा मंडावी

जब हमारे देश में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी को पता चला की चीन में उपजा कोरोना संक्रमण विश्व भर में फ़ैल रहा है तब प्रधानमंत्री जी ने राष्ट्रीय स्तर पर लॉकडाउन घोषित किया। इस घोषणा के चलते २५ मार्च २०२० को सभी यातायात के साधनों एवं सार्वजनिक सम्मेलनों को बंद कर दिया गया। इस वजह से जो जहाँ थे वे लम्बे समय तक वहीं रह गए या कहा जाये कि फस गए। इस मुश्किल समय में बाज़ार भी बंद रहे। यहाँ तक कि राशन की दुकानों को भी बहुत कड़ी निगरानी में खोला गया। राशन की दुकानों पर जाने वालों के लिए ख़ास नियम तय हुए। इन में से एक नियम यह भी था कि लोग आपस में कम से कम एक मीटर की दूरी बनाये रखें और अपने चेहरे को हर समय मास्क से ढककर रखें। इस प्रकार से 'सोशल डिस्टेन्सिंग' नामक नियम का पालन करने के लिए हमें निर्देश मिले। हमारे आस पास लोग इतना डर गए थे कि वे घर से बाहर भी नहीं निकला करते थे। साथ ही बहुत ज़रूरत पड़ने पर बाज़ार से सामान खरीदते थे। खरीदे गए सामान को घर लाकर अच्छी तरह से धोया जाता था चाहे वे सब्ज़ियाँ हों या बिस्कुट, चिप्स आदि के पैकेट। 'लॉकडाउन' के इस समय में महिलाएं ख़ास रूप से घर में ही रहीं लेकिन उन्होंने अपने आप को घरेलू कार्यों में व्यस्त रखा। खुदको व्यस्त रखने के लिए अलग-अलग प्रकार के कामों में लग गयीं, जैसे कि सिलाई का काम, पैरदान बनाने का काम, ऊन से स्वेटर बुनना, मिट्टी से खिलोने बनाना, इत्यादि। इस तरह से खुद को महिलाओं ने व्यस्त रखा। सामूहिक तौर पे ही नहीं बल्कि घर पर भी लोग संक्रमण से बचने के लिए दूरी बनाकर ही रह रहे थे, और नियमित रूप से अपने हाथों को थोड़ी-थोड़ी देर पर धो रहे थे। बाज़ार में सभी दुकानों में भी हाथों को धोने के लिए पानी व साबुन, सेवलॉन, डेटोल या 'सेनीटाइज़र' की व्यवस्था बनाई रखी ताकि आते-जाते लोग अपने हाथों को साफ़ रख सकें। चिन्हारी में मेरी साथी रेणुका यादव

बताती हैं कि लॉकडाउन के समय गाँव में महिलाओं एवं पुरुषों की एक ‘निगरानी समिति’ भी बनाई गयी थी। इस निगरानी समिति के सदस्यों की यह ज़िम्मेदारी थी कि वे घर-घर जाकर गांव के लोगों का हाल लेते रहें। उन्हें खास तौर पर उन्हें गांव वासियों में कोरोना के लक्षणों को लेकर चौकन्ना रहना था। ये भी ध्यान रखना होता था कि गांव में बहार से कोई न आये, यदि आये तो उन्हें घर में निश्चित रूप से संगरोध का पालन करना पड़े। निगरानी समिति के अलावा गांव में पुलिस का आना-जाना भी रहा। पुलिसवाले नियमित रूप से ध्यान रख रहे थे कि गांववाले कहीं सामाजिक दूरी के नियमों का उल्लंघन तो नहीं कर रहे थे। वे यह भी ध्यान रखते थे कि वे एक जगह पर एकत्रित न हों।

इस लॉकडाउन के कारण फाग महीने में होने वाली रबी फसल में किसानों को बहुत नुक्सान हुआ। यह दिक्कत इस वजह से आयी क्योंकि उस समय लॉकडाउन की वजह से खेत पर मज़दूरी करने के लिए लोग ही नहीं मिल रहे थे।

मुश्किल से अगर लोग मिले भी तो उन्हें आपस में बहुत दूरी बनाकर ही खेत में काम करना पड़ा और काम करते वक़्त मास्क भी पहनना पड़ा। हमारे गांव मार्दापोटी में कई सारे लोग दूसरे क्षेत्रों में गाड़ी चलाने के लिए जाते हैं। ऐसे लोगों को ख़ास रूप से दिक्कत झेलनी पड़ी क्योंकि जब वे बाहर से गाँव लौटे तो उन्हें उनके परिवार के साथ पंद्रह दिनों तक अपने-अपने घरों में बंद रहना पड़ता था।

इन परिवारों के घर में बंद रहने की वजह से गाँव में बनिहार या मजदूरों की कमी बनी रही। खेत में काम करने के लिए गाँव में ज्यादा लोग नहीं रह गए जिसके कारण रबी फसल उगाने वालों को भी काफी कष्ट उठाना पड़ा।

गांव के बड़े ही नहीं बल्कि नव युवक-युवती एवं बच्चों का जीवन भी बहुत प्रभावित हुआ। स्कूल बंद हो जाने के कारण सही समय से ना ही तो कक्षा लगी ना ही परीक्षा हो पायी। इस वजह से बच्चों को काफी संघर्ष करना पड़ा।

अमूमन हमारे गाँव में, मैंने देखा है कि गाँव वालों में एकता का भाव कम ही है। हमारे गाँव में कई बार ऐसा हुआ है कि लोग सामूहिक मुद्दों पर एकजुट फैसला नहीं कर पाते और अपने-अपने मतों की विभिन्नता की वजह से आपस में टकराहटें हो जाती हैं। मगर अच्छी बात यह रही कि इस बार इस महामारी के मुश्किल समय में मेरे गाँव के लोग साथ आ पाए। यह देख कर मुझे हैरानी तो हुई मगर ख़ुशी भी बहुत हुई। साथ ही लॉकडाउन से रियायत मिलने के बाद भी हमारे गांव के लोग सामाजिक दूरी के नियमों का पालन कर रहे हैं। जहाँ भी जाते हैं मास्क पहनकर ही जाते हैं और समय-समय पर अपने हाथ धोते रहते हैं।

लेखक का परिचय – हेमा मंडावी, ग्राम मार्दापोटी कि रहने वाली हैं। उन्होंने २०२० में बारहवीं कक्षा की परीक्षा पूरी कि और अब कॉलेज की पढ़ाई का शौक है। उन्हें चित्र कला में काफी रूचि है। हेमा शुरुआत से ही चिन्हारी का हिस्सा रही हैं (२०१७ से)। एक तरह से हेमा चिन्हारी की संस्थापक सदस्य हैं। यह लेख जून के महीने में लिखा गया था।

तालाबंदी के मायने

चिन्हारी के सदस्य

ग्राम झुझ्झाकासा के रमेश कोडोप्पी कहते हैं कि पहले तो हमें पता ही नहीं था कोरोना चीज़ क्या है। फिर समाचार देखते देखते हमने यह जाना कि कोरोना एक बीमारी का नाम है जो एक इंसान से दूसरे इंसान में फैल सकती है, मानो छूत की बीमारी हो। कोडोप्पी जी की तरह ही, कोरोना के बारे में समाचार द्वारा मिली जानकारी डोकाल के सियानो के लिए भी बड़े सवाल पैदा कर रही थी। उनके सवाल हमें भी अचंभित कर गए। उनकी समझ से यह बात परे थी कि चीन में लोग जो भी जानवर खा रहे थे (यह सवाल इस कल्पना पर स्थित थी की कोरोना बोमारी चमगादड़ों की प्रजाति से फैला है), उसे तो वे कई सालों से ही खाते आये होंगे। इस परिस्थिति में यह बीमारी अचानक से कैसे हो गयी। दुनिया भर में लोग अलग अलग प्रकार के जानवरों को सदियों से खाते आ रहे हैं, किस जानवर से बीमारी हो सकती है यह बात पूर्वजों के माध्यम से ही लोगों को पता चल जाती है। फिर अचानक से यह बिमारी कैसे फेली? उनका कहना था, अगर चमगादड़ से यह बीमारी फैलती तो मावन जाती को पहले से ही इसका पता होता।

झुझ्झाकासा में जब २१ दिन के लॉकडाउन की खबर आई तो उन्होंने बखूबी इसका पालन किया। उन्होंने गाँव में लोगों के आने जाने पर भी रोक लगाया। बहुत ज़रूरत पड़ने पर ही कोई गाँव से बाहर जाया करता था। इसी वजह से शायद उनका गाँव सुरक्षित रह पाया। इसी गाँव के संगठन की महिलाओं ने भी अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि इस बिमारी के बारे में अब तक वे सभी सुनते ही आये हैं, अभी तक गाँव की ओर यह बीमारी नहीं पहुँची है। खुद न देखने की वजह से कुछ पता नहीं चल पता कि बीमारी के बारे में क्या सच है और क्या झूठ। शुरुआती दिनों में लोगों को खाने पीने में भी डर लगता था। इसी सोच में रहते थे कि क्या पता किस खाने से यह बीमारी हो जाये, और मौत का सिलसिला शुरू हो जाये। डर से लोग मास-मटन से परहेज़ करने लगे। मुर्गी फार्म रखने वालों का काफी नुकसान हुआ। जानकारी का आभाव भी एक बीमारी ही है शायद।

ग्राम झुझ्झाकासा के महिला संगठन के सदस्यों का सोचना रहा और शायद यह उनकी प्रार्थना भी रही कि यह बीमारी उनके गाँव तक न आये; कि यह बीमारी जहाँ है वहीं समाप्त हो जाये। झुझ्झाकासा एक अंदरूनी जंगल इलाके का गाँव है शायद इसलिए अभी तक सुरक्षित है। बाहर के लोगों को गाँव के अन्दर आना मना है ताकि गाँव सुरक्षित रहे। गाँव आने के लिए रोड के तरफ का रास्ता बंद किया गया। और गाँव के लोग जंगल का रास्ता रोज़मर्रा के कामों के लिए इस्तेमाल करने लगे। गाँव में लोग जानते थे कि कोरोना लाने वाले लोग जंगल के रास्तो से कभी नहीं आयेंगे, वे तो पक्की सड़कों पर गाड़ियाँ उड़ाते हुए आयेंगे।

लॉकडाउन की स्थिति के बारे में बताते हुए ग्राम झुझ्झाकासा के रहने वाले कहते हैं कि उन्हें लॉकडाउन के दौरान ज्यादा परेशानी उठानी नहीं पड़ी। उनका कहना था कि वे लोग काम करने ज्यादा बाहर नहीं जाते। किसानी कार्य के पूरा होने के बाद महुआ चुनने का काम शुरू हो जाता है और उसके बाद तेंदू पत्ते की शुरुआत होती है। इस वजह से जंगल प्रदेश के लोग गाँव छोड़ कर नहीं जाते। बल्कि वे अकेले जंगल में महुआ के पेड़ के पास जा कर बैठते हैं और महुआ के फूलों को चुनते हैं। पलायन के लिए बहुत ही कम लोग जाते हैं – जैसे कि जिन्हें पैसो की कड़ी ज़रूरत हो, या जिनके पास बिलकुल ही ज़मीन न हो आदि। उनका कहना था कि भले इस महामारी के साथ दुनिया में कई प्रकार की परेशानियाँ आई होंगी मगर अब तक उन्होंने इसमे से कुछ भी

अपनी आँखों से नहीं देखा है। कोई भी परेशानी महसूस नहीं कि है। ज़रूर गाँव में लॉकडाउन हुआ है मगर इससे उनके रोज़मर्रा के जीवन को ज्यादा हानि नहीं पहुँची है। उन्हें लगता है देहात-गाँव में वे महफ़ूज़ हैं। कोडोप्पी जी का कहना था कि लॉकडाउन के दौरान पैसो की इतनी परेशानी नहीं रही क्योंकि खेती का पैसा तब तक खर्च नहीं हुआ था और किसानो को ज्यादा पैसों की ज़रूरत खेती के काम के शुरुआत में होती है। उसी समय उन्हें बीज, कीटनाशक, बनिहार आदि के लिए कर्जा लेना होता हैं। खरीफ और ज़ैद का समय पूरा हो चूका था। ज़्यादातर किसान धान व सब्जी बेच चुके थे। कुछ लोगों को रबी फसल के समय परेशानी ज़रूर हुई। लॉकडाउन की वजह से सड़क के पास वाले गाँव में लोग खेत नहीं जा पाए और उनके धान में बीमारी लग गयी, या किसी जानवर ने हानि कर दी आदि। मौसम का खेल कुछ ऐसा रहा कि जंगल से आने वाले फल-फूल इस साल ज्यादा मिले। महुआ, हर्रा, बेहड़ा आदि में इस साल फायदा ही रहा। मगर यह फायदा सड़क के गाँव व ऐसे गाँव जहाँ ज्यादा पलायन होता है नहीं उठा पाए, क्योंकि उन्हें जंगल जाने की अनुमति नहीं थी।

लॉकडाउन की स्तिथि कुछ ऐसी थी कि इस दौरान दुकाने और हाट तो बंद रहे मगर चावल, दाल, चीनी, सब्जी आदि की परेशानी नहीं रही। सोसाइटी (PDS) से अनाज, आस पास से सब्जी मिल जाती थी और बाकी बाज़ार से ज्यादा कुछ लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। हल्दी, नमक और मिर्च जैसी ज़रूरी चीज़ें गाँव में ही मिल जाती थी। यह बात ज़रूर है कि दो रुपये की चीज़ दस रुपये में मिल रही थी। महंगाई का भारी जोर रहा। और व्यापारियों ने अपने नुकसान की भरपाई मानो हमसे करवाई। आने जाने की भी कुछ परेशानी ज़रूर रही इस दौरान। ग्राम झुझ्झाकासा के लोगों का कहना रहा कि सही मायनों में देखा जाये तो गाँव में शहर से कम परेशानी रही होगी क्योंकि गाँव एक घर/परिवार जैसा है। जो गाँव रोड से अन्दर की ओर हैं वहां ज़्यादातर घर की जगह गाँव को बंद किया गया। इस लिए हम कम से कम अच्छी तरह से हवा पानी में रहे, घर में बंद नहीं रहे। शहर में लोगों के घर छोटे होते हैं, और घर खोलते ही सड़क आ जाती है। वे बेचारे तो घरों के अन्दर ही फस गए होंगे। साथ ही उनके यहाँ सभी कुछ बाहर से आता है, चाहे वह सब्जी हो या चावल। ऐसे में घर से निकलने का डर भी बना रहता होगा। मार्दापोटी (नगरी ब्लॉक, धमतरी) की महिलाओं का भी मानना कुछ ऐसा ही है। वे कहती हैं महामारी का समय हो या नहीं गाँव ही बेहतर है। वे यह भी कहती हैं कि इस मुश्किल समय में गाँव में कम से कम लोगों के लिए रोज़गार गेरेंटी (MGNREGA) का काम तो खुलता रहा। शहर में तो यह सुविधा भी नहीं मिलती। डोकाल के पुरुष सियानो की भी ऐसी ही समझ रही कि गाँव में लोगों का आना जाना ज्यादा है, वहां गन्दगी भी ज्यादा है, शहर को संभालना भी मुश्किल है इस लिए यह बीमारी शहरों में बढ़ रही है।

जहाँ झुझ्झाकासा के लोग लॉकडाउन से बहुत परेशान नहीं हुए ग्राम मार्दापोटी के महिला संगठन की महिलाओं ने अपनी ओर से कहा कि कोरोना काल उनके लिए कष्टदाई रहा। मार्दापोटी में ज्यादातर लोग पलायन करते हैं, वे ड्राईवर बन कर गाड़ी-ट्रक चलाते हैं। यह गाँव सड़क के पास का गाँव है। वहां के लोगों का कहना है कि काम बंद होने से उन्हें पैसों की काफी परेशानी रही। सरकार कि तरफ से ५०० रुपये की राशि तो मिल रही थी (कुछ लोगों को मिली और कुछ लोगों को नहीं मिली) मगर यह राशि घर खर्च के लिए काफी नहीं पड़ता था। तेल, हल्दी, सब्जी और मिर्च के लिए भी पैसे पर्याप्त नहीं पड़ते थे क्यूंकि सभी कुछ महंगा हो चला था। और जिन घरों में बच्चे हों वहां तो और भी ज्यादा खर्च! उनकी सोच थी कि अगर वक़्त ऐसा ही रहा और महंगाई इसी तरह बढ़ती चली गयी जल्द चोरियां भी बढ़ जाएँगी। उन्हें यह समझ नहीं आ पा रहा था कि काम करने वाला मजदूर अगर घर बैठेगा तो इंसान खायेगा कैसे और पकाएगा क्या? साथ ही उनके भीतर कुछ उथल-पुथल दिखाई दे रही थी। मार्दापोटी की महिलाओं का कहना था कि मार्च के महिना में लॉकडाउन इस लिए किया गया क्यूंकि शासन ने इस महामारी को सँभालने का बेड़ा

उठाया। इस महामारी के दौरान दिहाड़ी मजदूरों को खिलाने पिलाने का बेड़ा उठाया, यह उनकी एक सुन्दर कोशिश रही। मगर लीला बाई का कहना है कि बड़े शहरों के पास पैसे खत्म होने पर मजदूरों को वापिस भेजने की कोशिश शुरू कर दी गयी। ग्राम मार्दापोटी की (अधिकतम) आदिवासी महिलाएं यह सवाल उठाती हुई दिखाई दी कि क्या मजदूरों को वापिस भेजने का मतलब था उन क्षेत्रों में इस महामारी को बढ़ाना जहाँ वह नहीं पहुंच पाई थी? जो खाना-पानी यहाँ पंचायत के संगरोध केद्र में भेजा जा रहा था क्या उन्हें दिल्ली-बम्बई-चेन्नई नहीं भेजा जा सकता था? इस महामारी के समय हमें देश को राज्यों में बाटने की ज़रूरत क्यों पड़ी? यह दशा क्यों आ गयी कि दुसरे घर (राज्य) के बेटे-बेटी को हम अपने घर (राज्य) में नहीं खिला सकते? ये सवाल शायद हमारी मानसिकता को दर्शाते हैं। वह मानसिकता जो इस बात से जुड़ी है कि हमें खुद को बचाना है। वह मानसिकता जो मंदी की स्तिथि में खाना बांटने से ज्यादा अपना पेट भरने में विश्वास रखती है। इन बातों पर शिव्बती यादव कि कुछ अलग टिपण्णी रही। उनका कहना रहा कि सरकार ने कड़ी निगरानी रखी और अच्छा काम किया, ये तो लागों के भीतर का खोट है। उनके नियमो को न मानने की वजह से सरकार भी हिम्मत हार गयी, दिहाड़ी मजदूरों का भार उठाने से मना कर दिया और उन्हें वापिस भेजने की कोशिश में जुट गए। शिव्बती यादव की बातें भी नागरिकता के बारे में गहरा सवाल उठाती हैं – कि हम तब तक जागरूक नहीं होते जब तक संकट हमारे घर कि देहलीज़ न लांघ ले। क्या घर कि चार दीवारों के बाहर के लोगों कि तरफ हमारा कोई कर्तव्य नहीं बनता?

समूह की बूढ़ी महिलाएं यह सवाल भी उठाती नज़र आई कि ६० साल से ज्यादा उम्र के लोगों से अनुग्रह किया गया है कि वे घर में रहें, जिसका मतलब यह हुआ कि उन्हें अपने बहु-बेटों पर निर्भर रहना होगा। बात सुनने में अच्छी नहीं लगती मगर यह ज़रूरी तो नहीं कि बहु-बेटे बूढ़े माँ-बाप का ध्यान रखेंगे, उन्हें खाना देंगे। शिव्बती यादव कहती हैं, “यह कलयुग में फैली महामारी है इसीलिए शायद इसे ‘क-रोना’ कहते हैं।” भगवान इंसान से दुखी हो चुका है और अब जवाब दे रहा है। ग्राम झुझाकासा की महिलाओ का भी कुछ ऐसा ही कहना रहा। शहरो में बढ़ते खून, चोरी की कहानियां, छोटी छोटी बच्चियों का बलात्कार, इंसानों का बढ़ता लोभ आदि, भगवन इन सब का हिसाब ले रहा है। ऐसा हिसाब की किसी की मौत पर उसके सगे-सम्बन्धी व गाँव के लोग भी नहीं जा (पा) रहे। यह लेख गाँव में लॉकडाउन की स्तिथि को समझने कि मंशा से लिखा गया है। यह लेख चिन्हारी कि उत्सुकता को दर्शाता है जो यह जानना चाहते थे कि उनके गाँव-क्षेत्र के लोग इस महामारी के वक़्त खुद को कैसे सुलझा रहे हैं। यह लेख लिखते समय लगा कि यह समय इंसानियत पर ज़रूर कई सवाल उठा रहा है। कोरोना काल पृथ्वी वासियों के लिए एक घातक समय रहा है। इस समय ने कई चिकनी चमड़ियों के पीछे छुपे काले शव की परछाई हमें दिखाई है। शायद साथ ही हमारे भीतर की कालिख भी हमें अब दिखने लगी है – वह कालिख जो अब और लोगों की आखों के सामने अँधेरा ला रही है। शायद कोरोना के वैक्सीन से भी ज्यादा ज़रूरी हमारे लिए व्यक्ति केन्द्रित सोच से बहार निकलना है। शायद आत्मनिर्भरता के पहले हमें परस्पर-निर्भरता सीखना ज़रूरी है।

<u>लेखक का परिचय</u> – यह लेख अलग अलग गाँव में चिन्हारी के सदस्यों द्वारा लिए गए साक्षात्कारओं को साथ ला कर बनाया गया है। इन साक्षात्कारों को साथ ला कर, एक कहानी में पिरोने का काम स्वर्णिमा कृति (जो अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली के 'सेंटर फॉर डेवलपमेंट प्रैक्टिस' में 'फेलो इन एक्शन रिसर्च' के तौर पर कार्यव्रत हैं और 'चिन्हारी: द यंग इंडिया' की संस्थापक सदस्य हैं) ने किया है।

(२) 'महामारी के दौर में घर लौटते प्रवासी'

यह अप्रैल २०२० की कहानी होगी, कोरोना ने गंभीर रूप ले लिया था। शहरों के साथ साथ गावों के छोटे छोटे कस्बों में भी कोरोना से जुड़ी बातें होने लगी थी मगर सही तौर पर गाँव वासियों के विचार हम तक नहीं पहुँच पा रहे थे। साथ ही अप्रैल-मई वो समय रहा जब टेलीविज़न पर प्रवासियों से सम्बंधित समाचार भी अपनी जगह बना रहे थे। हम उन पत्रकारों के शुक्रगुज़ार हैं। इस समय गाँवों में लोगों के कई तरह के संघर्ष रहे पर साथ ही बना एक डर – शहर का डर। यह उस शहर का डर था जिसे बनाया तो प्रवासियों ने ही था पर फिर भी, विपरीत परिस्थितियों में ,उनके लिए वहाँ जगह कम पड़ गई। जहाँ लोगों के अन्दर मया (प्रेम) भी कम था। ये शहर वो जगह हैं जहाँ से लोग हवाई जहाज़ में उड़ते हैं, विदेश जाते हैं, मगर इस महामारी के लिए खुद को बिलकुल भी ज़िम्मेदार नहीं समझते।इन समृद्ध शहरों से प्रवासी मजदूर धूप, धक्का और भूख लेकर अपने गाँव - घर को लौट पड़ा।

घर जाने का कोई साधन नहीं पर बिन साधन की वो पथ यात्रा उनको शहर से ज़्यादा सुरक्षित लगी। उनका यह फैसला शहर को और उसमे रहने वाले शहरवालों को कुछ कहता हैं, उनके बारे में कुछ कहता है। घर लौटते प्रवासियों के पैरों के छाले, गोद में लदे बच्चे और इनसे भी ज़्यादा खौफ देने वाली मृत प्रवासियों की तस्वीरें मानवीय संवेदना को विचलित कर रही थी। ऐसी स्थिति में चिन्हारी का मन भी कचोट रहा था। हम इस वक़्त को समझना चाहते थे। इस समय को समझने के लिए हमने कुछ साक्षात्कार आयोजित किये। प्रवासियों के साक्षात्कार के लिए हम अनुभा सिन्हा और प्रवीणा महला को धन्यवाद करते हैं समाचार पत्र के इस पहले भाग के दूसरे हिस्से 'महामारी के दौर में घर लौटते प्रवासी' के माध्यम से प्रवासी के अनुभवों को समझने की कोशिश प्रस्तुत है।

टेलीफोन पर चर्चा : एक प्रवासी के अनुभवों की कहानी - प्रवीणा महला

कोरोना के दौरान एक प्रवासी मजदूर से चर्चा - अनुभा सिन्हा

आंकड़ों की मानवीयता

अजय दांडेकर और राहुल घई 'आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक' (EPW) में प्रकाशित (प्रकाशन तारीख – ९ मई २०२०) हुए शोध कार्य के माध्यम से बताते हैं कि हमारे देश में ४५०० लाख (पैतालीस सौ लाख) आतंरिक प्रवासी (internal migrant) हैं। दांडेकर और घई बताते हैं कि आतंरिक प्रवासियों का यह अनुभाग 'अनौपचारिक क्षेत्र' (informal sector) का हिस्सा है। इस क्षेत्र की कोई एक सर्वव्यापक परिभाषा नहीं है पर यह तय है कि इन ९३% (तिरानबे प्रतिशत) लोगों को कभी भी काम पर रखा जा सकता है और इन्हे कभी भी काम से बेदखल किया जा सकता है। ऐसा इस भी लिए है क्योंकि यह हिस्सा किसी भी तरह के कठोर 'श्रम कानून' के दायरे में नहीं आता। दांडेकर और घई बताते हैं कि भारतीय सरकार के आंकड़ों के अनुसार, प्रवासियों की यह संख्या, हमारे देश की कुल वर्क फोर्स (काम करने वालों की संख्या) का ९३% (तिरानबे प्रतिशत) हिस्सा हैं। वह यह भी बताते हैं कि, अमूमन, प्रवासियों के आंकड़ों का यह अध्यन अधिकतर 'जनगणना' एवं 'राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय' (अंग्रेज़ीमें 'नेशनल सैंपल सर्वे आर्गेनाइजेशन', NSSO) के द्वारा इकत्रित डेटा के माध्यम से किया जाता है। पर उनका मानना है कि इन स्रोत में आंकड़े न्यून-कथित (अंग्रेज़ीमें 'understated') होते हैं। यह डेटा छोटे समय के लिए किये गए 'सीजनल प्रवास' को ठीक तरह से नहीं दर्शाता। इसके अलावा उनका शोध यह भी दर्शाता है की भारत में सबसे अधिक प्रवास उत्तर प्रदेश और बिहार से होता है। इन दो राज्यों के बाद आते हैं राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, उत्तराखंड, जम्मू और कश्मीर एवं पश्चिम बंगाल। अलग-अलग राज्यों से निकले हुए प्रवासी सबसे अधिक जाते हैं – दिल्ली, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश एवं केरल। दांडेकर और घई द्वारा प्रस्तुत इस अध्यन के अनुसार, राष्ट्रीय स्तर की तुलना में, छत्तीसगढ़ से प्रवास का आंकड़ा प्रमुख नहीं है पर पिछले कुछ सालों में प्रवास का सिलसिला यहां बढ़ा है।

मार्च में जब राष्ट्रीय स्तर पर 'लॉकडाउन' घोषित हुआ तब छत्तीसगढ़ के बहुत सारे लोग दूसरे राज्यों में थे। दूसरे राज्यों में फसे प्रवासियों के संघर्षों की कहानियां आए दिन अखबारों में जगह पा रही थी। पर समाचार और ख़बरों में कई बार ऐसा होता है कि जीते जागते लोग सिर्फ एक आंकड़ा बन कर रह जाते हैं। आंकड़ों की अपनी अहमियत है पर उनके शोर में अक्सर मानवीय अनुभव खो जाते हैं। इस लेख में मेरी कोशिश रही है कि मैं इन आंकड़ों से दूरी बना, इनमे सिमटे इंसानों से बात कर सकूं।

मेरी इसी कोशिश ने मुझे 'टिकेश्वर मंडावी' तक पहुंचाया। लॉकडाउन की घोषणा के समय वह महाराष्ट्र के अहमदनगर में थे। टेलीफोन के माध्यम से हुए हमारी चर्चा पाठकों के लिए प्रस्तुत है। मेरी उम्मीद है की टिकेश्वर के साथ हुए संपर्क से, आंकड़ों में सिमटे लाखों इंसानों में से किसी एक के जीवन का मानवीय अनुभव हम तक पहुंच पाएगा।

टेलीफोन पर चर्चा: एक प्रवासी के अनुभवों की कहानी

प्रवीणा महला

फ़ोन पर नंबर डायल कर दिया गया है। नीरस सी घिसी पिटी घंटी की बजाय एक मज़ेदार रिंगटोन सुनने को मिल रही है। हिंदी फिल्म का ही कोई गाना है। बहुत जाना पहचाना लग रहा है पर ठीकसे याद नहीं आ रहा की किस फिल्म का गाना है। गाने के बोल हैं "तू अगर मिल जाए तो मैं दुनिया छोड़ दूँ"। गीतकार की धुन अच्छी है और गायक की आवाज़ सुरीली। सुनने में इतना अच्छा लग रहा है कि सामने वाला फ़ोन उठाने में थोड़ा विलम्ब भी करे तो मुझे कोई शिकायत नहीं। अचानक दिमाग दौड़ा और याद आया कि यह गाना तो हालही में आई फिल्म 'कबीरसिंह' का गाना है। फिल्म ने बॉक्स ऑफिस पर रिकॉर्ड तोड़ प्रदर्शन किया। कई दिनों तक गली मौहल्लों में इसी फिल्म के गाने बजे। पर फिल्म कुछ और भी वजहों से सुर्ख़ियों में रही। फिल्म का विषय ही कुछ ऐसा था। नारीवादीपक्ष में बोलने वालों ने फिल्म के किरदारों और फिल्म के सन्देश की कड़ी निंदा की। फिल्म समीक्षकों में एवं दर्शकों में खूब बहस छिड़ी। कुछ ने दिल खोलके फिल्म को स्वीकृति दी तो कुछ ने उतने ही जोर और शोर से उसे नाकारा। पर बॉक्स ऑफिस पर तो धूम मची रही, दर्शकों ने खूब चाव से फिल्म देखी। सिनेमा हॉल में खूब तालियाँ और सीटियाँ बजी। तो ऐसे में छत्तीसगढ़ में रहने वाले टिकेश्वर मंडावी के फ़ोन पर इस फिल्म के गाने की रिंगटोन सुनी तो मेरे अपने मन में एक हल्की सी उथल-पुथल मची। टिकेश्वर से पहले कभी मिली नहीं थी। उसका नंबरमुझे, चारामा (छत्तीसगढ़) के मेरे घर की मालकिन, सरोज गावड़े जी, से मिला था। चारामा में मैं एक 'विकास' सम्बंधित परियोजना के लिए कार्यरत हूँ। महामारी के चलते, देशभर में जो 'लॉकडाउन' हुआ, उसने समाज के कई वर्गों को संघर्षमय कर दिया। अखबारों में प्रकाशित हुई 'प्रवासी' मजदूरों के संघर्षों की कहानियां भी पढ़ी मैंने। मन में विचार आने लगे कि जिस क्षेत्र में मेरी अपनी परियोजना क्रियान्वित है, वहाँ के लोगों की खबर किस तरह मिल सकती है। तो ऐसे में अपनी मकान मालकिन सरोज जी की मदद लेना मुझे ठीक समझ आया। सरोज जी कांकेर की सरकारी स्कूलों में अध्यापिका हैं। उनसे मैंने निवेदन किया, अगर वह किन्ही प्रवासी मजदूरों के संपर्क में हैं तो उनका फ़ोन नंबर मुझे प्रदान करें। टिकेश्वर मंडावी का नंबर मुझे इसी तरह मिला। यह साक्षात्कार जून के महीने में किया गया था और लग भग उसी समय में इसकी प्रतिलिपि भी तैयार हुई; इसलिए लेख का सन्दर्भ उस समय की मेरी समझ से सीमित है। तो जब मैंने टिकेश्वर के फ़ोन की रिंगटोन सुनी तो मन में जिज्ञासा उठने लगी। सोचने लगी – क्या टिकेश्वर ने 'कबीरसिंह' देख रखी है? यदि हाँ तो क्या उसे पसंद आई होगी? अगर पसंद आई होगी तो टिकेश्वर के 'नारीवाद' पर किस तरह के विचार होंगे? इस तरह के कई सवाल मेरी जिज्ञासा में बुलबुले बन उठ रहे थे। उस फिल्म की कहानी और उसके किरदारों के साथ मेरी अपनी सोच की उलझन का सफर दिलचस्प रहा है। कई मौकों पर मैंने फिल्म की कहानी में बुने 'उत्तेजित' किरदारों के पीछे छुपी 'लैंगिकता' की सूक्ष्म पॉलिटिक्स को समझना चाहा। बड़े पर्दे पर दर्शाए हुए उत्तेजित किरदार किस तरह नव युवतियों एवं युवाओं की अपेक्षाओं को बुनते है और किन सूक्ष्म तरीकों से ये अपेक्षाएं जाने अनजाने हमारे जीवन की लैंगिक समझ को प्रभावित कर उसमे प्रवेश पाती हैं, यह समझने की ज़रुरत है। पर टिकेश्वर से इस बारे में स्पष्ट रूप से पूछना ठीक समझ नहीं आया। सोचा कि मौके की नज़ाकत को समझ मुझे टिकेश्वर के प्रवास के अनुभवों पर ही ध्यान देना चाहिए। सरोज जी से मुझे यह ज्ञात था कि टिकेश्वर मंडावी ग्राम पंचायत खैरखेड़ा (उत्तर बस्तर कांकेर) के रहने वाले हैं। और हाल ही में लौटे हैं। अभी अपनी ग्राम पंचायत के संगरोध केंद्र (quarantine centre) में भर्ती हैं। इसके आगे और इसके पीछे की कहानी सुननी, समझनी और लिखनी बाकी थी। टिकेश्वर ने जैसे ही फ़ोन उठाया, मैंने बहुत तहज़ीब से उन्हे टेलीफोनिक साक्षात्कार का निमंत्रण दिया। उनकी प्रति क्रिया से समझ आया कि उन्हे अपने

अनुभवों के बारे में बताने में कोई आपत्ति नही थी। उन्होने यहाँ तक कह दिया 'चलो, किसीने तो पूछा' ।तो बात हमारी यहीं से शुरू हुई। इस टेलीफोनिक साक्षात्कार का सार निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है।

टिकेश्वर का जन्म एवं लालन पालन चारामा ब्लॉक के गाँव खैरखेड़ा में हुआ है। टिकेश्वर पांचवी कक्षा में थे जब उनकी माता जी का देहांत हो गया। घर का बड़ा बेटा होने के साथ साथ वह अपने से कुछ ही साल छोटी किशोरी के भाई भी हैं। माता जी के देहांत के बाद उनके पिता जी ने दांपत्य जीवन को त्याग दिया। टिकेश्वर बताते हैं कि लोगों के बहुत समझाने पर भी उनके पिता जी ने दूसरा विवाह नही किया। उस समय टिकेश्वर स्वयं बाल अवस्था में थे तो उनका और उनकी छोटे बहन का अधिकाँश समय अपनी ताई (पिता जी के बड़े भाई की पत्नी) के घर पर ही बीता। उन्होने अपनी ताई को ही अपनी बड़ी माँ के रूप में देखा। कक्षा ग्याहरवी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात उन्होने पढ़ाई छोड़ने का फैसला किया। उन्हे लगा कि घर चलाने के लिए उन्हे अपने पिता जी का हाथ बटाना चाहिए। तो स्कूल छोड़दी और अपने पिता जी के खेत पर काम करने लगे। जब कभी खेती का मौसम ना हो तो स्थानीय स्तर पर ही कुछ 'छोटा-मोटा' काम ढून्ढ लेते रहे। पर धीरे-धीरे इन 'छोटे-मोटे' कामों से ऊब गए। टिकेश्वर कहते है कि चारामा में तो सिर्फ 'छोटा-मोटा' काम ही मिलता है और इस तरह के काम में नाही तो 'मज़ा' है और ना ही 'बजट' है।

पिछले साल सितम्बर में अपने गाँव के पांच और साथियों के साथ उन्होने महाराष्ट्र में बसे अहमदनगर जाने की योजना बनाई। उनकी इस योजना के हिसाब से दस महीने उन्हे अहमदनगर में रहना था। जिसका मतलब यह हुआ की उनकी वापसी इस साल के महीने जून में होनी थी। इस योजना के पीछे उनका तर्क था कि अहमदनगर में मोटा पैसा कमा, 'खरीफ' के मौसम हेतु वह अपने गाँव-खेत लौट जाएगा। दूसरे प्रदेश जाने का कोई डर और संकोच बिलकुल नही था। जिस सेठ के यहां काम करने जा रहा था वह तो पिछले नौ या दस सालों से उसके गाँव वालों को मजदूरी का काम दे रहा था। सेठ को जानते हैं गाँव वाले तो डरने की कोई वजह नहीं थी। गांव से हर साल बहुत युवा जाते हैं सेठ के यहां काम करने। तो सितम्बर में टोली निकल पड़ी पैसे कमाने और कुछ ऐसा काम करने जिसमे 'मज़ा' आए। उनके साथ बस्तर जिले से कुछ पांच युवा और मिल गए। टिकेश्वर से मैं बहुत स्पष्ट रूप से उनके पलायन का कारण पूछना चाहती थी पर मेरा स्पष्ट सा सवाल सुनकर टिकेश्वर का लहज़ा गंभीर से कुछ हास्य (शायद व्यंग भी) की तरफ चला गया। मुझे ऐसा लगा जैसे कि मैंने कोई बहुत ही बेतुका या बुद्धिहीन सवाल पूछ डाला। टिकेश्वर बोला, “क्या मैम, क्यों जाएगा आदमी घर छोड़कर? पैसे का ज़रुरत है। इधर का काम समझ नही आता। बजट बड़ा हो जाएगा, उस दिन जाना छोड़ दूंगा” ।

अहमदनगर में टिकेश्वर और उसके साथी 'बोरगाड़ी' के लिए मज़दूरी करते थे। बोर गाड़ी के मायने मुझे समझ नही आये तो मैंने टिकेश्वर से पूछा। टिकेश्वर कहता है कि यह बहुत 'हार्ड काम' है। कई बार तो दिन और रात मिलाकर काम करना पड़ता है। 'बोरवेल' खोदने का काम करती है 'बोर गाड़ी' । जिस किसीको अपने खेत में या अपने ज़मीन में बोरवेल खुदवानी होती है, सेठ को बता देते हैं। और सेठ टिकेश्वर जैसे लोगों को काम पर लगा देता है। इस काम में मानवीय मजदूरी काफी लगती है। एक जना खुदाई वाली गाड़ी का 'ऑपरेटर' (संचालक) होता है और बाकी के लोग अपने हाथों से मजदूरी करते हैं। कई बार रात भर खुदाई चलती है। तब ऐसा लगता है जैसे कि मजदूरी करने वाले नींद में चल रहे हों। कभी कभी आँख लग जाती है, कुछ लोग नींद में गिर भी जाते हैं पर फिर अगले दिन आराम करने को मिल जाता है। दुर्घटना का डर भी रहता है, कभी कभी तो हो ही जाती है, तब सेठ ही इलाज करवाता है चोटिल लोगों का। वैसे सेठ ने रहने को कमरा दे रखा है। खाने को दाना-पानी का इंतज़ाम भी कर

देता है। मैं समझना चाहती थी कि ऐसे हालातों में रहने वालों की मनोस्थिति किस तरह प्रभावित होती है। तो टिकेश्वर बताता है कि “मन लग जाता है। वहीं रहेंगे, वहीं काम करेंगे तो मन लगेगा ही ना। आठ साल से जा रहे हैं तो मन तो लगेगा ही ना”। मेरे अनुमान में टिकेश्वर को मेरा सवाल कुछ ख़ास अहम नही लगा। ऐसा लगा जैसे कि वो मुझे कह रहा है कि यह भी कोई बात हुई पूछने लायक या यह भी कोई सवाल हुआ? पर इस बात को मैंने छोड़ा नही। मैंने अलग ढंग से अपना सवाल प्रस्तुत किया। मैं जानना चाहती थी कि परिवार से दूर रहने पर उनकी मनो स्थिति कैसे बदलती है। परिवार का ज़िक्र सुना टिकेश्वर ने तो बताने लगे कि उनके गुट में से सिर्फ दो ही लोग शादी शुदा हैं। बात पर बात खुली तो मैंने जानना चाहा कि शादी शुदा जो लोग हैं उनके गुट में, क्या उन्होने कभी भी अपनी पत्नी और बच्चों को साथ ले जाना ठीक नही समझा? टिकेश्वर झट से एक तीव्र स्वर में बोले, "नही लड़की लोगों को नही लेके जाते। वहाँ 'हार्ड काम' करना पड़ता है। लड़की लोगों से थोड़े ऐसा काम होता है?" यह बताते बताते वह थोड़ा नरम पड़े और बोले कि 'वैसे तो हमारे चारामा तरफ की लडकियां करती हैं हार्ड काम पर यह काम अलग ही है। छोटा-मोटा काम है। बड़ा बजट के लिए जाते हैं। बस्तर की लडकियां जाती हैं थोड़ा दूर भी पर हमारे गाँव नही आती इस की लडकियां नही जाती।' 'कबीर सिंह' के माध्यम से मैं टिकेश्वर के साथ 'हमारी' लैंगिक समझ पर भले ही चर्चा ना कर सकी पर लड़कियों को अपने साथ ले जाने के सवाल से उभरी उनके स्वर की तीव्रता शायद कुछ दर्शा रही थी। इस दर्शन को मैं भली भाँती समझने का दवा नहीं कर सकती पर ऐसा एहसास हुआ कि हमारी लैंगिक समझ हमारी रोज़ मर्रा की ज़िंदगी में इतने ठोस तरीके से गढ़ी हुई है की उसके दर्शन हेतु स्पष्ट सवालों की ज़रुरत भी नहीं पड़ती। वह तो हमारी अंतर्निहित कल्पना (implicit assumptions) से ही, अनायास, दर्शित हो जाती है।

टिकेश्वर संग बात चीत के इस सिलसिले में, हम अब महामारी के विषय पर पहुंच गए थे। टिकेश्वर बताते हैं कि अहमदनगर में संक्रमण की संख्या बहुत कम थी इसलिए वहाँ के माहौल में ज़्यादा गंभीरता नही थी। राष्ट्रीयस्तर पर घोषित हुए 'लॉकडाउन' के मान में रोज़मर्रा का जीवन तो स्थगित हुआ पर कुछ ही दिनों में लोगों ने, धीरे-धीरे, काम वापस शुरू करने के प्रयत्न किए। पर फिर भी शासकीय स्तर से यही दबाव था कि लोग गमनागमन संबंधित परहेज करें। टिकेश्वर की अपनी निजी योजना के अनुसार उन्हे जून तक काम करना था पर महामारी की दशा में उन्हे अपनी योजना में परिवर्तन करने पड़े। जून महीने के तीसरे हफ्ते में उन्होने घर लौटने का मन बना लिया। टिकेश्वर नही चाहते थे घर लौटना। पर उनके गाँव से पंचायत प्रतिनिधियों का फ़ोन आने लगा था। पंचायत प्रतिनिधि घबरा रहे थे। उन्होने टिकेश्वर को घर लौट आने के निर्देश दिए। टिकेश्वर बताते हैं कि गांव में सभी काफी डरे हुए थे। उन्हे डर था कि समय के साथ संक्रमण और भी अधिक बढ़ जाएगा। इसलिए पंचायत प्रतिनिधियों ने साफ़ शब्दों में उन्हे जता दिया कि अगर टिकेश्वर तुरंत नही लौटे तो फिर शायद दो-चार साल तक उनका लौटना नही हो पाएगा। लौटने की व्यवस्था में उनके सेठ ने सहयोग दिया। उन्हे उचित कागज़ बनवा दिए प्रशासन द्वारा और लौटने के लिए गाड़ी का इंतज़ाम भी करवा दिया। उनकी मेहनत के अनुसार उनके पैसों का हिसाब भी पूरा कर दिया। और इस तरह उनकी वापसी की यात्रा शुरू हुई। वे बताते हैं कि उन्हे अपनी इस यात्रा में कोई गंभीर कष्ट नहीं हुआ।

मैंने जिस समय टिकेश्वर को फ़ोन किया था, वह संगरोध केंद्र में भर्ती थे। उनके साथ उनके साथी भी थे। बस्तर के जो युवा उनके साथ हो चले थे, वे भी उनके साथ ही लौट आये थे। मैं संगरोध केंद्र में उनकी रोज़मर्रा ज़िंदगी को समझना चाहती थी। टिकेश्वर ने बताया कि जबसे लौटे हैं, ग्राम पंचायत की स्कूल में ही संगरोध कर रहे हैं। उनके घर वाले आजाते हैं मिलने पर दरवाज़े

के उस पार से ही बात करके चले जाते हैं। लड़की लोग इतना दूर नही आती। वह चारामा के आस पास ही काम करने जाती हैं। फिर घर और खेत का का भी तो होता है। किसी को तो रहना होगा ना घर संभालने के लिए। लडकियां

संगरोध केंद्र में उन्हे किसी तरह की असुविधा नही है। पर वह दिन भर बैठे-बैठे बोर हो जाते हैं। कुछ समय के लिए अपने मोबाइल में वीडियो देख लेते है या 'गेम' खेल लेते हैं। पर उसके अलावा करने को कुछ ख़ास होता नही है।

अपनी भविष्य की योजना को लेकर टिकेश्वर काफी स्पष्ट थे। उन्होने बताया की वह आठ सालों से पलायन पर जा रहे हैं, जिस वजह से उनका 'बजट' अब काफी बड़ा हो गया है। अब उन्हे पलायन पर जाने की कोई ख़ास ज़रुरत नही है। बजट अच्छा हो तो पलायन पर कोई ना जाए, ऐसा टिकेश्वर का मानना है। नई जगह जाना कुछ अच्छा भी लगता है पर अभी तो एक लम्बे सफर से लौटे हैं तो कुछ समय अपने लोगों के बीच ही रहेंगे। वह बताते हैं कि उनका अपना भाई है जिसका 'सर्विस सेंटर' है चारामा (उत्तर बस्तर कांकेर) में। टिकेश्वर की योजना है कि वह अपने भाई के सेंटर पर ही काम करेगा कुछ समय। दो पहिया गाड़ियों की सर्विस करने का काम होगा जो उसे उसका भाई सिखा देगा। अगर टिकेश्वर का मन लग गया तो वह हमेशा के लिए वहीं रह जायेगा। बात चीत का हमारा सिलसिला लंबा चला। संगरोध केंद्र में किसी तरह की कोई व्यस्तता नही थी तो टिकेश्वर जी से लम्बी बात हो सकी। एक बार के लिए सोचा की अब तो शायद मैं पूछ सकती हूँ उनसे 'कबीर सिंह' के बारे में। जिज्ञासा अभी भी थी पर फिर भी नही पूछा। शायद फिर कभी। चारामा में जहां मेरी मकान मालकिन का घर है, उसके कुछ ही दूर टिकेश्वर का गाँव भी है। टेलीफोन पर हुई इस चर्चा को शायद कभी मिलकर ही पूर्ण किया जाएगा। महामारी का प्रकोप किसी दिन ढलेगा। तब शायद टिकेश्वर से मिलकर ही पूछा जाएगा कि 'कबीर सिंह' के किरदार और फिल्म की कथा पर उनके क्या विचार हैं।

कोरोना के दौरान एक प्रवासी मजदूर से चर्चा

अनुभा सिन्हा

पिछले पांच महीनों से पूरे विश्व की जो स्थिति हो रखी है, वो बयान नहीं कि जा सकती। जिस बारे में कभी सोचा, कभी देखा नहीं वैसी परिस्थिति में आज हर कोई कैदी बने बैठा है। और हो भी क्यों ना? जब नाश के कारण हैं तो भोगी भी खुद ही बनना पड़ता है। पर इस आपदा के वक़्त शोक मनाके बैठ जाना एक बात है, और इस आपदा में अपने परिवार को चलाना एक अलग बात। घर में बैठे हर उस व्यक्ति के साहस को दाद देनी होगी जिसने पांच महीने भले सड़क की गहमा गहमी नहीं देखी पर एक भी दिन अपने लोगो को भूखा नहीं रहने दिया। इस सब में पैसे की कीमत बढती ही गयी। जिसके पास पैसे है वो अपने अनुसार कार्य को पूरा तो कर ले रहे हैं, वहीं कुछ परिवार ऐसे भी हैं जिनकी प्रति दिन की जद्दो जहद सिर्फ दो वक़्त के खाने का जुगाड़ करने में बीत रही है। यहां ऐसे ही एक परिवार की कथा या व्यथा, जैसा आप समझे, दर्शाने की कोशिश की गई है।

यह कहानी एक प्रवासी चित्रेखा और उसके परिवार की है। चित्रेखा सांकरा नाम के एक गांव (नगरी, धमतरी जिला) की वासी है। वह जिस जाति से आती हैं, उन्हे निषाद कहते हैं। निषाद पारंपरिक रूप से मछुआरों की जाति है। वो मछली पालनकर अपना जीवन यापन करते हैं। चित्रेखा का परिवार भी यही कार्य किया करता है। परन्तु सात लोगों के इस परिवार का भरण पोषण इस कार्य से नहीं हो पाता है। इनके पास जमीन नहीं है। चित्रेखा एक बड़े ही जर्जर अवस्था वाले मिट्टी के घर में अपने परिवार के साथ बसर करती हैं। क्योंकि सांकरा एक व्यवस्थित एवं बड़ा गाँव है, वहां चित्रेखा जैसे परिवारों की संख्या कम है और वे कभी सरकारी नज़रों में भी नहीं आते। इसी कारण बहुत परेशानियों के बाद चंद्रिका (जो ३२ साल कि हैं) अपने पति के साथ एक कॉन्ट्रैक्टर की मदद से तेलंगाना गई और कोविड-१९ के तहत लगने वाले लॉकडाउन से पहले अपने घर लौट आई।

नगरी में लौटने वाले प्रवासियों की संख्या लग भग ६०० रही। जिसमें से कुछ महाराष्ट्र, कुछ मध्य प्रदेश, कुछ तेलंगाना एवं कुछ राज्य के ही अन्य हिस्सों से वापस आए। यहां लौटे प्रवासियों को पहले पंचायत द्वारा बनाए गए संगरोध केंद्र (quarantine center) में रखा गया फिर घर पर ही 7 दिनों तक बंद रहने को बोला गया। इन सबके बीच परिवार में हो रही परेशानियों का सामना करते हुए एक वार्तालाप परिवार के सदस्यों के साथ भी हुई। अनुभा ने सवालों का सिलसिला शुरू किया।

<u>सवाल:</u> दीदी आपने कहां प्रवास किया और क्यों?

<u>चित्ररेखा:</u> हम लोग छत्तीसगढ़ से तेलंगाना गए। क्यों गए? ऐसे ही। यहां घर पे कुछ काम-धंधा नहीं है हमारे पास तो हम ठेके के काम से वह आस-पास के कुछ और लोगो के साथ वहां चले गए। पैसे भी अच्छे मिल रहे थे।

<u>सवाल</u>: अगर आप प्रवास नहीं करते तो अपना जीवन यापन कैसे करते हैं?

<u>नरेश (चित्ररेखा के ससुर जी):</u> हम लोग तो निषाद है, मछली का काम करते है। मछली खाते भी है और उसी से कमाते भी हैं। हमारे पास आजीविका चलाने के लिए कोई स्थायी साधन नहीं है तो मछली से या रोजगार गारंटी के काम से जो आता है उसी से कमाते और खाते हैं। रोज जो आता है उसी में काम चलाना पड़ता है। (नरेश एक 73 साल के मछुआरे है। उनकी दो संतान हैं, एक बेटा जो कि एक दुर्घटना के बाद शारीरिक रूप से कमजोर हो गया और वजनदार कर्यो को करने में सक्षम नहीं हैं और दूसरी उनकी एक बेटी दुर्गा, जिसने कठीन परिस्थिति में भी खुदको ग्रेजुएट कर लिया। अभी घर में रहके अपने पिता एवं भाई के परिवार की देख-भाल कर रही है।)

<u>सवाल:</u> अच्छा चित्रेखा एक बात बताइए, आप और आपके पति तेलंगाना किस कार्य से गए थे?

<u>चित्रेखा:</u> हम इट बनाने के ठेके पर गए थे। चुकीं आपके भैया इतना कार्य नहीं कर पाते हैं तो वो वहां भी भारी कार्य नहीं कर रहे थे।

<u>सवाल:</u>कितने रुपए में आपको ठेका मिला था दीदी?

<u>चित्रेखा:</u> (पैसे के बारे में ज्यादा जानकारी ना देते हुए) ज्यादा तो नहीं बस काम चलाने जैसे।

सवाल: फिर भी! आप कितने दिन के काम से वहां गए थे? और अभी कितने दिन बचे थे जब आप आ गए? और क्या आप दोबारा वहां जाना चाहेंगे?

चित्रेखा: हम यहां से छह महीने के ठेके पर गए थे। अभी हमें तीन महीने ही हुए थे जो हम लौट आए। दोबारा तो वहां नहीं जाना चाहती पर घर की स्थिति आप देख रहे हैं, जाना पड़ भी सकता है।

सवाल: आप खाली हाथ वहां से तो नहीं लौटे होगे दीदी? अगर आप ये सोच रहे हो की पैसे की बात सुन कोई कुछ बोलेगा या मैं इन सब बातों का गलत उपयो गकरूंगी तो ऐसा है नहीं। ये आपके स्थिति को समझने और आपके मदद आने के लिए पूछे जा रहे हैं।

चित्रेखा: (मुस्कुराते हुए) दीदी तीन महीने के हिसाब से हमें 15000 मिले हैं। मत लब ठेका 60000 का है, आधा काम हुआ है तो आधे पैसे लेके हम आ गए।

नरेश: (थोड़ी कांपती हुई आवाज़ में) मेरे दो बच्चे हैं। पत्नी की कुछ वर्ष पूर्व मौत हो जाने के बाद घर की स्थिति और बिगड़ गई। बेटा काम नहीं कर पाता। घर की हालत तो दिख ही रही है। इतना जर्जर है। बच्चे ज़मीन पर सोते हैं। बीमार पड़ जाते हैं। किसी तरह से घर चला रहा हूं। बेटी आगे पढ़ने की इच्छा रखती है, कैसे पढ़ाऊंगा? मुझे अपनी स्थिति पे खुद दुख होता है।

सवाल: इस लॉकडॉउन के समय आपने अपने परिवार को कैसे संभाला?

नरेश: पंचायत की ओर से काफी मदद रही। शुरू शुरू में खाने के लिए पंचायत की ओर से चावल, दाल दिया गया। प्रदान (जो की छत्तीसगढ़ में महिला स्वसहायता समूहों के साथ कार्य करती है) की ओर से भी सब्जी, नमक, तेल,आदि दिया गया। पर एक दो महीने तक तो चल गया, फिर तो हालात वैसी ही हो गई। कब तक कोई कुछ दे पायेगा? ये समय ऐसा है कि खुद भी बहुत कुछ चलाना पड़ा है। कई बार सिर्फ भात भी खाके चलाना पड़ा। दो हफ्ते नरेगा कार्य में गए थे और फिर किसी के यहां जाके खेत काम करके कमाए। ऐसे ही चला।

सवाल: तो फिर एक बात बताइए, अभी ऐसा क्या है जो आप चाहते हैं कि आपको मदद के रूप में मिले? अनिवार्य तौर पर?

नरेश: मुझे बस आवास दिलवा दीजिए। और कुछ नहीं। हमारे बच्चे जैसे जमीन में सोकर अपने दिन बिता रहे हैं, जितना वो बीमार पड़ते हैं, उन्हे तो बहुत परेशानियां होती है। ढंग का घर रहे तो कुछ भी मुमकिन है।

घर के हालात कुछ ऐसे थे कि में कुछ भी बोलने के लिए खुद को सक्षम नहीं समझ रही थी। फिर भी मैंने उनको बताया कि मेंअपनी ओर से जहां तक हो सके आपके कार्य को पूर्ण करने की कोशिश करूंगी। बाद में मैंने क्षेत्र के ADEO और सचिव से बात किया। उनके अनुसार 2011 की सूची में अगर नाम है तो काम हो जाएगा वरना थोड़ा इंतजार करना होगा। काम बड़ा है पर कुछ छोटे कदम लेने होंगे। घर के सदस्यों को बताया गया कि कुछ दिन में कुछ सब्जियों के बीज (प्रदान संस्था द्वारा) दिए जाएंगे जहां वे मचान (घर के पीछे 2 डेसिमल की छोटी सी जगह है) बनाकर कम से कम खुद के खाने भर की सब्जियां ले सकते हैं। ये बात सुन सबके चेहरे पे एक हल्की मगर संतोष की किरण दिखाई दी।

<u>नरेश:</u> (मेरे हाथो को पकड़ते हुए) मैं बहुत आभारी हूं जो तुम यहां आयी। आज तक किसीने इतना समय हमारे साथ नहीं बिताया। इसमें से कोई का मना भी हो तो कोई बात नहीं। तुम हमेशा तरक्की करो ये मेरा आशिर्वाद है।

साक्षात्कार कर्ता (अनुभा सिन्हा) का अनुभव: ये समय बहुत ही हृदय विदारक है। आज जब मैं इस परिवार से मिली तब मुझे काफी दुख एवं चिंता हुई कि जिस गांव में पिछले डेढ़ साल से काम कर रही हूं, जहां मुझे लगता था कि किसी भी परिवार में किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, वहां मुझे इस परिवार में चमचमाते संसार का दूसरा पहलू दिखाई दिया। मुझे इस साक्षात्कार ने संवेदनशील बनाया। जब 73 साल के नरेश जी ने मुझे आशिर्वाद दिया तब मन हुआ अभी कुछ ऐसा कर दूँ कि इनके कष्ट कम हो जाए। पर हर बात सिर्फ सोच लेने से तो होगी नहीं। काम बहुत है, मौके कम। इस असंवेदनशील परिस्थिति ने बहुत सी संवेदनाओं का सृजन किया है। अगर हम किसी परिवार को इस विकट समय में बचाने में सक्षम रहें तो ही किसी भी कार्य का कोई महत्व है वरना सबव्य र्थ। आशा है धीरे ही सही पर निषाद परिवार एक बेहतर जिंदगी की ओर बढ़पाए।

<u>लेखक का परिचय</u> – अनुभा सिन्हा अंबेडकर विश्वविद्यालय से पढ़ी हैं। पिछले तीन साल से प्रदान संस्था की कार्यकर्ता हैं। वे प्रदान में NRLM सलाहकार के रूप में कार्यव्रत हैं। उनके काम में उन्होंने गंभीर रूप से जेंडर, शक्ति (पावर) और घरेलु हिंसा को देखने की कोशिश कि। अनुभा को नए लोगों से मिलना और घूमना पसंद है। यह लेख अगस्त के महीने में लिखा गया था।

---

(३) एक रास्ता रचनात्मकता की ओर : महामारी के वक्त में 'कला' की खोज

अपने 'जीवन' में आमोद की ज़िम्मेदारी हमारी अपनी होती है। परिस्थितियाँ हर दम हमारे अनुकूल नहीं होती पर उनके प्रति हमारा मनोभाव हमारी मनोस्थिति को गढ़ता है। पिछले सात महीने आर्थिक के साथ साथ मानसिक रूप से भी हम पर हावी रहे हैं। इस समय की जटिलता को समझते हुए चिन्हारी ने मुश्किल वक़्त में अपनी मनोस्थिति को एक सकारात्मक रुझान प्रदान करते हुए रचनात्मकता के प्रति रुख किया। अपनी खुशियाँ खुद खोजने की कोशिश कि। महामारी की दशा में जो सबसे ज़्यादा विचलित हुआ है वह है - 'जीवन'। तो सवाल फिर यही है कि 'जीवन' को कोई कैसे संजो के रखे? मृत्यु के कारण अनेक हो सकते हैं, तरीके उससे भी बढ़कर, पर जीवन' को बचाने का, उसे संजोने का, उसे पालने का तरीका क्या हो सकता है? इसी सवाल के साथ चिन्हारी के कुछ सदस्यों ने गुलाब के कुछ पौधों को अपनाया। इन गुलाबों संग जीवन की सुंदरता के साथ एक रिश्ता बनाने की कोशिश के साथ साथ कुछ मनचलों ने चित्रकारिता भी आज़माई। समझने की कोशिश यही रही कि मृत्यु और विनाश के समय में 'जीवन' के साथ कैसा रिश्ता हो सकता है। कोरोना से हो रही परेशानियों को याद रखते हुए अपने जीवन को एक रचनात्मक मोड़ देने की कोशिश कि, अपनी कोशिशों से पुनर-निर्माण की नींव बनाई - 'जीवन' के पुनर निर्माण की नींव।

अतरंगी गुलाब : गुलाब संग जीवन में रंग - पूजा

गुलाबों संग खिलते रिश्तों की उमंग - इमरान

मनचलों की मस्ती : चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति - रेणुका

भाग (1) स्वर्णिमा द्वारा बनाए हुए चित्रों पर चिन्हारी की किशोरिओं की प्रतिक्रिया

भाग (2) चिन्हारी के सदस्यों द्वारा बनाए चित्रों पर अर्पित और सवी की प्रतिक्रिया

अतरंगी गुलाब: गुलाब संग जीवन में रंग

पूजा यादव

हमने अपने आस पास बहुत गुलाब देखे हैं। हमारे गाँव में कई घरों में खिलते हैं गुलाब। तो जब कृति दीदी के यूनिवर्सिटी (अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली) से आए इमरान सर से हमने गुलाब के पौधे लगाने के अलग-अलग तरीके सुने तो हम बहुत उत्साहित हो गए। उन्होने हमे बताया की एक पौधे पर अलग-अलग रंग के गुलाब खिलाये जा सकते हैं। उन्होने बताया की अंग्रेजी में इस तकनीक को 'ग्राफ्टिंग' कहते हैं। अलग-अलग रंगों के गुलाबों की टहनियों को एक ख़ास तरीके से काटकर उन्हे गुलाब के पौधे पर बाँध देने से अलग-अलग रंग वाले गुलाब एक ही पौधे पर खिल सकते हैं। इस 'ग्राफ्टिंग' की तकनीक से मुझे गाँव में लड़कियों और चिन्हारी (www.chinhari.co.in) का रिश्ता याद आता हैI जैसे हम लड़कियाँ अपने-अपने घरों की डालियों पर खिलती हैं और अब हम सब चिन्हारी से भी जुडी हुई हैंI तो किन्ही मायनों में चिन्हारी वह नायाब पौधा है जिसकी हर डाली से अलग-अलग रंगों के फूल खिलते हैंI

इमरान सर को हमने अपने गाँव में उगने वाले सफ़ेद गेंदों के बारे में बताया। उन्हें सफ़ेद गेंदों की बात सुनकर बहुत हैरानी हुई। उन्होने बताया कि नारंगी रंग के गेंदे उन्होने खूब देखे हैं पर सफ़ेद रंग का गेंदा ना कभी देखा और ना ही कभी सुना। तो अब हमारे बीच बात तय हो चुकी थी। इमरान सर हमे विभिन्न रंगों वाला गुलाब उगाने का तरीका सिखाएंगे और हम उन्हेस फ़ेद रंग के गेंदों का बीज देंगे। जिससे की दिल्ली में अपने घर पर वे सफ़ेद गेंदा उगा सकें।

हमारे बीच का वादा तय था। तो जब फरवरी के महीने में इमरान सर का फिर आना हुआ हमारे गाँव तो हम लड़कियों को याद आया कि हम अपने हिस्से का वादा भूल गए थे। हम इमरान सर के लिए सफ़ेद गेंदों का इंतज़ाम नहीं कर पाए पर इमरान सर अपने साथ बहुत सारे रंगों के गुलाब ले आये। उन्होने हमे पूरे सात पौधे दिए। इमरान सर से मिलने, डोकाल और मार्दापोटी के सदस्य एक जगह इकट्ठा हो गए थे। जब पौधे मिले तो झटपट वहीं तय हो गया की चार पौधे हम डोकाल के सदस्यों को दे देंगे और बाकी के तीन पौधे मार्दापोटी के सदस्यों को मिलेंगे। पौधों के वितरण के साथ साथ सदस्यों में उन्हे संभालके रखने की ज़िम्मेदारी का एहसास भी था।

मैं मार्दापोटी में रहती हूँ। हमारे हिस्से में नारंगी, हल्का गुलाब और पीला गुलाब का पौधा आया। पौधे मिलने के अगले ही दिन मैंने अपने कुछ साथियों के साथ मिट्टी की क्यारिआं बनाई। मिट्टी में खाद भी मिलाया जिससे की मिट्टी को अच्छा पोषण मिले। इन क्यारियों में मैने गुलाब लगाए। मैं इन पौधों में हर रोज़ पानी देती रही। समय के साथ इन पौधों में नयी टहनियां निकली। मुझे मेरी बड़ी बहन कविता की मदद मिली। वह भी पौधों को संभालती थी। जब कभी मैंने कोई लापरवाही की तो उसने मुझे डांटा भी। कुछ समय बाद ऐसे लगने लगा कि वह पौधे मेरे पूरे परिवार वालों की ज़िम्मेदारी हो गई थी। मेरी छोटी बहन रेणुका भी गुलाबों को सहेजने लगी। हम तीनों ने आपस में नियम तय कर लिए थे। पौधों को बारी-बारी देखते। अपने छोटे-छोटे पौधों को बड़ा होते देखकर अच्छा लगता। पर इस बात पर गुस्सा भी लगता था कि संगठन की लड़कियाँ जैसे गुलाबों को भूल ही गयी थी। कोई उन्हे देखने भी नहीं आता था। पर मैने कोई शिकायत नहीं रखी इसको लेकर। और फिर कोरोना महामारी के चलते पूरे गाँव में लॉकडाउन हो गया। सब अपने घरों में ही रहते थे तो अब नाराज़गी की कोई वजह भी नहीं रही। जब कई दिनों तक अपने साथियों से मिलना भी ना हुआ तो उनके लिए प्यार भी कुछ नया उमड़ आया था। अब जब लॉकडाउन से कुछ रियायत मिली है तो बाकी लड़कियाँ कभी- कभी आती हैं गुलाबों को देखने। सब हैरान होती हैं गुलाबों के उजले रंग देखकर। पौधे बड़े भी तो हो गए। मुझे बस येही ख्याल आता है कि इन खिले खिले गुलाबों को देखकर मुझे इतनी खुशी होती है तो जिन्होंने ये गुलाब दिए उनको कितनी खुशी हो रही होगी।

लेखक का परिचय – पूजा यादव चिन्हारी की सदस्य हैं और मार्दापोटी (नगरी, धमतरी) की निवासी हैं। ठाकुर भाव सिंह विश्वविद्यालय में विज्ञान की पढ़ाई कर रही हैं। वे २०१८ से चिन्हारी का हिस्सा रही हैं और चिन्हारी के काम को आगे बढ़ाने में उनका काफी योगदान रहा है। पूजा को नए लोगों से मिलना, बातें करना, नई चीज़ें सीखना,आदि अच्छा लगता है। वे अपने गांव और घर के लिए चिन्हारी के माध्यम से कुछ करना चाहती हैं। यह लेख जून के महीने में लिखा गया था।

गुलाबों संग खिलते रिश्तों की उमंग

इमरान

चिन्हारी के साथ गुलाबों वाली यह कहानी शुरू हुई इस साल कि शुरुवात के साथ। संयोगवश, चिन्हारी के साथ मेरे परिचय का अवसर भी यही रहा। मैं एक लम्बे समय से दिल्ली में स्थित, अंबेडकर यूनिवर्सिटी, में सामाजिक विज्ञान से सम्बंधित पढ़ाई और शोध करवाता रहा हूँ। स्वर्णिमा से एक अध्यापक कि भूमिका में मेरा परिचय, यूनिवर्सिटी के माध्यम, से ही हुआ। इन बीते सालों में, स्वर्णिमा ने, कई मौकों पर मुझे धमतरी आने का न्योता दिया पर अलग-अलग कारणों से धमतरी जाने का संयोग नहीं बन सका। इस साल, जनवरी माह की शुरुआत में यह संयोग आखिर बन ही गया। मन में इस बात कि राहत थी कि एक लम्बे समय से छूटी हुई यह सामाजिक औपचारिकता पूरी हो सकेगी।

अलग-अलग गांवों में, लोगों से मिलने के अपने पुराने अनुभवों के कारण मैं निश्चिंत था कि बड़े बुज़ुर्गों के साथ मेरी बातचीत में मुझे कोई परेशानी नहीं होगी। दिल्ली से आए 'प्रोफेसर' और 'राजनीतिक विज्ञान' के विशेषज्ञ कि छवि में, गाँव के बड़ों कि अपेक्षाओं का मुझे अंदाज़ा था। अमूमन, गांव के बड़े मुझसे 'विकास' सम्बंधित चर्चाएं ही चाहते हैं। जिसमे मुझे कोई मुश्किल नहीं होती थी। अपने अनुभवों के आधार पर, अगर गाँव की चर्चाओं में मुझे कहीं दिक़्क़त होती थी, तो वह थी बच्चों के साथ बात चीत। मेरा 'अध्यापक' होना, छोटे बच्चों को ख़ास तौर पर, मुझसे थोड़ी दूर ले जाता है। और मेरी विशेषज्ञता में उन्हे कोई ख़ास रूची होती नहीं थी। इन कारणों से मुझे उनसे बात चीत करने के विषयों पर काफी सोच विचा रकरना पड़ता था। और मेरे अध्यापक की छवि के कारण बच्चे मुझसे बात चीत करने में हिचकिचाते थे जो उन्हे मुझसे दूर ले जाता था।

अपने इन विचारों के साथ, जनवरी की एक शाम, मैं स्वर्णिमा संग डोकाल गाँव में चिन्हारी के सदस्यों से मिलने पहुंचा। सबसे पहली मेरी भेंट संगठन कि कुछ किशोरियों और बच्चियों से हुए। इस भीड़ में एक बच्ची थी जिसने मेरा ध्यान ख़ास तौर से आकर्षित किया। उस बच्ची ने अपने छोटे से हाथों में एक चटकलाल रंग का बड़ा सा गुलाब थामा हुआ था। पंखुड़ियां बड़ी थी तो यह भी तय था कि फूल देसी प्रजाति का नहीं था। गुलाब की यह प्रजाति यह दर्शाती थी कि गाँव में लोगों को फूलों की बागबानी का भी शौक था। कुछ लम्हों के लिए मुझे अपना बचपन याद आ गया जब मैं अपनी माँ के पीछे-पीछे अपने नए घर के बाग़ान में उनका हाथ बटाता था। मुझे बागबानी इसलिए पसंद थी क्योंकि मिट्टी में नंगे पाँव चलना और उसमे खेलना मुझे बहुत पसंद था। बचपन भले ही बीत गया पर यह पसंद अभी भी मेरे अंदर जीवित है। दिल्ली के अपने घर में, नाही तो अब बागबानी कि जगह है और ना ही समय है। पर अब भी, जब तब मौक़ा पड़ता है, मिट्टी में नंगे पाँव घूमता हूँ। बच्ची के हाथों का वह गुलाब मुझे अपने बचपन की याद दिला रहा था।

संगठन की किशोरियों संग, अब मैं, उनकी बाड़ी कि तरफ चलने लगा था। किशोरियाँ मुझे अपनी बाड़ी और उसमे हो रही सब्ज़ी उगाने कि तैयारी दिखाना चाहती थी। उनके उत्साह में मैं उनके संग हो चला और बात चीत के इस सिलसिले में मुझे उनकी दुनिया और उसके मायने कुछ कुछ नज़र आने लगे थे। कुछ समय बाड़ी पर बिताकर मैं संगठन के सभी सदस्यों संग गाँव के

चौपाल की तरफ बढ़ा जहाँ बाकी और सदस्य एकत्रित हो रहे थे। प्रकृति के संग संगठन के रिश्ते को ध्यान में रखते हुए, अब हमारी बातचीत का विषय था 'पानी और मिट्टी का सम्बन्ध'। हम सभी गोल आकार बनाकर बैठ गए और मैं उन्हे चित्रों के माध्यम से पानी और मिट्टी के आपसी मेल जोल के प्राकृतिक सिद्धांत समझाने लगा। किशोरियों को मेरे चित्रित विवरणों ने प्रभावित किया और मैं उन तक अपनी बात पहुँचा पा रहा था। जिनसे दर किनार था मैं अभी तक, वे थे संगठन के छोटे बच्चे। उन्हे मेरी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनकी आँखों में देखकर ऐसा लग रहा था कि मानो वे सब कुछ पहले से ही सीखे समझे बैठे हों। उनको कोई मौक़ा दे तो शायद मुझे ही दो चार ज्ञान की बातें सिखला दें। फिर भी कुछ था जिसके चलते उनकी नज़रें मुझ पर थी। मुझे ऐसा लगा जैसे कि मुझे 'नाप' रहे हों। खुदको साबित करने के लिए मैं इन बच्चों को अपनी बातों में सम्मिलित करना चाहता था। मेरे लिए अब यह एक चुनौती बन गया था कि मैं इन छोटे बच्चों तक पहुँच सकूँ। इन बच्चों तक पहुँचने के लिए मुझे अपने बचपन का सहारा लेना ठीक समझ आया। और इस मुलाकात में मेरे बचपन को इन बच्चों से जो जोड़ रहा था वो पुल था गुलाब का फूल। जो कि मुझे भीड़ में भी बच्ची के हाथों में दिख गया था।

मिट्टी और पानी की बात चीत से होते हुए फूल और बागबानी के विषय में प्रवाहित हो जाना मुझे स्वाभाविक लगा। फूलों का विषय जब प्रस्तुत हुआ तो किशोरियों ने गाँव में उगने वाले अलग-अलग तरह के फूलों के बारे में बताया। जब उन्होने मुझे सफ़ेद गेंदे के बारे में बताया तो मुझे एक मज़ेदार हैरानी हुई। मैंने बागबानी के अपने शौक में बहुत रंगों के गेंदे देखे हैं - लाल, पीला, नारंगी। गेंदे कि कई प्रजातियां भी देखी हैं पर सफ़ेद गेंदे के बारे में ना कभी सुना था और ना ही कभी देखा था। सफ़ेद गेंदे कि मेरी नासमझी और उसके साथ आई हैरानी छोटे बच्चों को रोचक लगी। दिल्ली के बड़े से अध्यापक ने बड़ी सी दुनिया तो देखी पर छोटे से पौधे पर उगने वाले सफ़ेद गेंदे के फूल छूट गए। शायद इसी बात से चमक उठे थे उनके चहरे। यह देख मैं कुछ संतुष्ट हुआ क्योंकि फूलों से ज़्यादा मेरा ध्यान उन छोटे बच्चों पर था। जो मैंने चाहा था वो फूलों से मुझे मिल गया था। लेकिन मेरी कहानी में मज़ा अभी बचा था।

सही मौके की डोर पकड़ मैंने उन्हे एक ही पौधे में उगने वाले बहु रंगी गुलाबों के बारे में बताया। 'ग्राफ्टिंग' की विधि के अंतर्गत किसी एक रंग के गुलाब की टहनी से छाल समेत गुलाब की 'आँख' छीली जाती है। इस छालयुक्त गुलाब की आँख को किसी दूसरे रंग के गुलाब पर, उसी मोटाई की टहनी पर, कसकर बाँध दिया जाता है। बांधने से पहले इस दूसरे रंग के गुलाब की टहनी से छाल समेत आँख छील ली जाती है। उसी छिली हुई टहनी पर इस पहले गुलाब की छाल युक्त आँख को बांधा जाता है। बांधते वक़्त इस बात का ध्यान रखा जाता है की बंधे हुए हिस्से में पानी और हवा का प्रवाह ना हो सके। 'ग्राफ्टिंग' कि विधि से बनाए जाने वाले इस तरह के पौधे की बात सुन बच्चे अपनी जगह से कुछ आगे सरक आए।

मेरे फूलों ने आखिर अपना रंग दिखा ही दिया। बच्चों के ध्यान के साथ उनका उत्साह मुझे परस्पर महसूस हो रहा था। बच्चे अभी भी शब्दों से कुछ नहीं बोल रहे थे पर उनके चेहरों की चमक अब कुछ और स्पर्शनीय हो गयी थी। सफ़ेद गेंदे और बहु रंगी गुलाबों के साथ मेरे और बच्चों के पास एक दूसरे को सिखाने के लिए कुछ नया था। तो वादा तय हुआ कि अगली मुलाकात में मैं उन्हे अलग-अलग रंग के गुलाब दूंगा जिन्हे वो 'ग्राफ्टिंग' की विधि से जोड़ पाएं। संगठन की किशोरियों और बच्चों के हिस्से का वादा था कि वो मुझे सफ़ेद गेंदे के फूल और बीज देंगे। हमारे इन आपसी वादों के साथ मैंने उस समय के लिए सभी से विदा ली।

डोकाल से लौटते समय स्वर्णिमा के साथ मेरी चर्चा शुरू हुई। हम सोच विचार कर रहे थे कि मेरा उद्देश्य सिर्फ 'ग्राफ्टिंग' सिखाना ही है या उसके माध्यम से कुछ और भी सिखाया जा सकता है। क्या संगठन के सदस्यों के साथ, गुलाब के पौधों के लालन पालन की प्रक्रिया में, जीवित रहने के बारे में भी कुछ सीखा जा सकता है? प्रकृति हर वक़्त जीवन संजो रही होती है। अलग-अलग तरह के जीव जंतु अपना लालन पालन प्रकृति से पा रहे होते हैं। इस लालन पालन में प्रकृति और अलग-अलग जीव जंतुओं के बीच एक अंतरनिर्भरता होती है। प्रकृति की सामूहिक परिकल्पना का सिद्धांत ही कुछ ऐसा होता है। सामूहिक स्तर पर एक ऐसी अंतरनिर्भरता जिसमे 'स्वयं' का अहंकार नहीं हो और ना ही एकलवाद की तृष्णा हो। जहां 'आत्म' के भीतर ही 'अंतर' सम्मिलित हो और 'अंतर' से ही आत्म अंकुरित होती हो। ऐसी सोच हमे 'आत्मनिर्भरता' की एक नई परिभाषा की तरफ ले जा सकती है। मेरा उद्देश्य यह भी था कि, गुलाब के पौधों की देख रेख में, संगठन के सदस्य प्रकृति के सिद्धांतों के प्रति जागरूकता पा सकें।

दिल्ली लौटते समय मैं गहरे विचारों में था। डोकाल के अपने अनुभव को समझने कि कोशिश कर रहा था। 'ज़िंदगी' के मायनों को लेकर मेरे भीतर एक मीमांसा छिड़ गई थी। अब मेरे विचार कुछ दार्शनिक हो चुके थे। पौधों में भी तो ज़िंदगी है। तो फिर ऐसे में पौधों का लालन-पालन करना, उनका ध्यान रखना अपने आप में 'जीवन' को सहेजने सामान था। मन में कई और सवाल उठ रहे थे। मैंने आख़री बार इस तरह की 'ग्राफ्टिंग' कुछ पच्चीस या तीस साल पहले कि थी। मैंने इस बारे में कई किताबें भी पढ़ी हैं मगर एक लम्बे समय से अपने हाथों से ऐसा कुछ नहीं किया था। जिसके कारण से इसे सही ढंग से दुबारा कर पाने में मुझे अपने सामर्थ्य पर शंका थी। मुझे पूरी तरह से विश्वास नहीं था कि बच्चों के साथ कि जाने वाली 'ग्राफ्टिंग' में मैं सफल रहूँगा।

मुझे इस बात की स्पष्टता थी कि गुलाब के फूल मेरे लिए बच्चों से जुड़ने का एक माध्यम मात्र थे। बच्चों के साथ इस ग्राफ्टिंग के सिवा मैं कुछ और भी करना चाहता था। डोकाल में, चिन्हारी से हुई मुलाक़ात ने एक संभावना को जन्म दिया। मुझे अंदाज़ा भी नहीं था कि मेरी कल्पना इस तरह कि दिशा पालेगी। मैं इस 'ग्राफ्टिंग' की क्रिया के माध्यम से और उसे कर पाने की अपनी (अ)सक्षमता के द्वन्द से 'अध्यापक - विद्यार्थी' के रिश्ते पर पुनर्विचार करना चाहता था।

शैक्षिक संस्थानों की पारम्परिक संरचना के अनुसार अध्यापक को सर्वज्ञानी समझा जाता है। विद्यार्थी वो है जो विद्या को ग्रहण करने वाला भिक्षुक है। यह रिश्ता श्रेणीबद्ध है जिसमे यह मान लिया जाता है कि सिर्फ अध्यापक ही 'ज्ञानयुक्त' है और उसका विद्यार्थी ठीक उससे विपरीत, 'ज्ञानरहित' है। इस रिश्ते में अध्यापक 'ऊपर' और विद्यार्थी 'नीचे' का पद ग्रहण करता है। विद्धार्थी भले ही विफल हो जाए पर अध्यापक की विफलता की कल्पना तक नहीं है।

बच्चों के साथ 'ग्राफ्टिंग' की अपनी इस योजना के माध्यम से मैं इस श्रेणीबद्ध रिश्ते पर पुनर्विचार करना चाहता था। यूनिवर्सिटी में मुझे यह मौका शायद कभी नहीं मिलेगा, यहाँ के नियम ही कुछ ऐसे हैं। पर चिन्हारी में मुझे इस मौके की संभावना परस्पर दिखती है। चिन्हारी के संग ग्राफ्टिंग के इस माध्यम के ज़रिये मुझे इसकी संभावना दिखती है। 'अध्यापक - विद्यार्थी' के रिश्ते की श्रेणीबध्दता में मेरा विचार एक लम्बे समय से निवेशित है। ऐसे में, इसे परिवर्तित कर पाने के मौके ने मुझे बहुत उत्साहित किया।

अपने इस प्रयास पर मेरे मन में बहुत सारे सवाल थे और अभी भी हैं। क्या होगा अगर मेरे सिखाए हुए 'ग्राफ्टिंग' के सिद्धांतों ('थ्योरी') से बच्चे सफलतापूर्वक ग्राफ्टिंग की क्रिया ('प्रैक्टिस') को अंजाम दे पाएं पर इस क्रिया में मैं खुद विफल हो

जाऊं? क्या होगा अगर मेरे सिखाए हुए तरीके को आज़माने पर बच्चों के हाथों से 'ग्राफ्टेड' गुलाब खिल जाएँ पर मेरे हाथों से 'ग्राफ्टेड' गुलाब कभी उग ना पाएं? इसी संभावना के जन्म ने मुझे उत्साहित किया। मेरे सिखाने की प्रक्रिया के परिणामस्वरुप अगर मेरा विद्यार्थी सफलता पा जाए पर उसी क्रिया में मैं खुद विफल हो जाऊं तो क्या हमारे 'श्रेणीबद्ध' रिश्ते में कुछ परिवर्तन आएगा? क्या मेरे विद्यार्थी अब भी मुझे अपने अध्यापक के रूप में स्वीकार करेंगे? यदि करेंगे तो क्या हमारा नया रिश्ता पहले से अलग होगा? और यदि अलग होगा तो क्या पहले से ज़्यादा न्यायसंगत और बराबरी का होगा? जहाँ अध्यापक और विद्यार्थी एक दूसरे को 'अनुभवयुक्त ज्ञान' का आदान प्रदान कर सकने कि कल्पना को स्वीकार सकें? मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि एक न्यायसंगत रिश्ते की तलाश में मैं खुद जानकर के अध्यापक की भूमिका में विफल हो जाऊँगा। मैं भरपूर कोशिश करूंगा कि मेरे हाथों से 'ग्राफ्टेड' गुलाब ज़िंदगी पाएँ और खिल जाएँ। पर मैं चाहूंगा कि मैं विफल हो जाऊं और वे गुलाब कभी ना खिलें। मेरी कोशिश सफलता कि रहेगी पर मेरी चाहत विफलता कि होगी। यह विचार सुनने में थोड़ा अंतर्विरोधी लग सकता है पर यहअंतर्विरोधी नहीं है। यह ज़रूरी नहीं कि जटिलताह मे शाही अंतर्विरोधी हो। कुछ मायनों में मेरी विफलता में एक छोटी सी सफलता भी छुपी होगी। और वह होगी कि बच्चे अब मुझे एक साथी के रूप में देखें ना कि एक अध्यापक के रूप में। मेरे अपने अनुमान में यह एक तरह कि सफलता है क्योंकि एक साथी के रूप में हम एक दूसरे से सीखते रहेंगे। और इस प्रक्रिया में एक दूसरे के साथ सम्मिलित हो सकें शायद। एक 'श्रेणीबद्ध' अध्यापक की भूमिका में मुझे उनसे सिर्फ दूरी मिलेगी। उनके साथ सम्मिलित होने से शायद ये बच्चे जो अब तक अपनी नज़रों से मुझे नाप रहे थे वो अब अपने शब्दों से मुझे अपने साथ ले लें। यूनिवर्सिटी में तो मैं अध्यापक हूँ ही पर क्या चिन्हारी में मैं अध्यापक के साथ (या फिर अलावा) कुछ और भी हो सकता हूँ? दिल्ली लौटने कि यात्रा में इस तरह के विचार मेरे साथ ही रहे।

अपनी पहली मुलाकात के कुछ डेढ़ महीने बाद मेरा फिर से धमतरी लौटना हुआ। मैंने पूरी ईमानदारी के साथ बच्चों के लिए अलग-अलग गुलाबों की व्यवस्था कि। धमतरी की कई गलियों में चक्कर लगाने पड़े पर आखिर में मुझे अलग-अलग रंगों वाले गुलाब के पौधे मिल ही गए। जब मैं पहुंचा डोकाल तो हमें फूलों के अलावा और भी विषयों पर चर्चाएँ करनी थी। इन चर्चाओं के दौरान हमने गुलाब के पौधों को कमरे के एक कोने में रखकर बाकी विषयों पर चर्चाएँ शुरू कि। चिन्हारी की किशोरियाँ उन चर्चाओं में बढ़ चढ़कर सम्मिलित हो रही थी। मगर बच्चियों को जैसे कोने में रखे गुलाब के पौधों ने सम्मोहित कर लिया था। मैं मन ही मन यह देखकर एक बच्चे की तरह खिलखिला रहा था। सारे चर्चाओं के बाद हम पौधों के वितरण के विषय पर पहुँच गए। वितरण से पहले मैंने उनसे अपने सफ़ेद गेंदे के फूलों के बारे में पूछा। जिस पर उन्होने बड़ी मायूसी से कहा कि पौधे बन नहीं पाए थे। मैं, एक ऐसे बच्चे की तरह जिसे 'वचनबद्ध' खिलौना ना मिला हो, अपने गुलाबों के पौधों को वापस ले जाने कि बात कहने लगा। इसपर जिस तरह से किशोरियों और बच्चियों ने मुझे मनाया उसका अनुभव शब्दों से परे है। शायद वो न्यायबद्ध रिश्ता जिसमे स्नेह से भरा रूठना और मानना होता है उसके बीज रोपे जा रहे थे। जब पौधे दिए बच्चों और किशोरियों को तो उनका उत्साह देख अच्छा लगा। मुझे लगा कि पुनर्विचार की मेरी सोच और कोशिश को चिन्हारी में आश्रय मिल गया।

पौधों को चिन्हारी के हवाले किये आज कई महीने बीत गए हैं। हमारी दूसरी मुलाकात के बाद हम सभी का जीवन बहुत परिवर्तित हुआ है। 'कोविड' नामक महामारी के चलते जीवन में संघर्षों के मायने भी बदल रहे हैं। जब मैंने पूजा का लेख 'अतरंगी गुलाब' पढ़ा तो मुझे चिन्हारी के साथ बिताया हुआ समय याद आ गया। पूजा अपने लेख में गुलाबों से सम्बंधित अपने अनुभवों को लिख रही हैं। वे बता रही हैं कि गुलाब के पौधों की देख भाल की प्रक्रिया में किस तरह उनकी बहने भी उनके साथ जुड़ गयी। पौधों के इर्दगिर्द अब नए रिश्ते खिल रहे हैं या यूं कह लेते हैं कि पुराने रिश्तों को नए धागे मिल रहे हैं। मैंने सोचा नहीं था कि पौधों की देखभाल की प्रक्रिया का एक आयाम यह भी होगा। पूजा के लेख ने मुझे विस्मित किया।

मुझे यह जानके अच्छा लगा कि पौधों को ज़िंदगी देने के साथ इंसानी रिश्तों में भी ज़िंदगी कुछ और भर गयी। ठीक पौधों के फूलों की तरह इंसानी रिश्ते भी खिल गए। बहुरंगी फूलों के साथ रिश्तों ने भी नए रंग पा लिए। यह बात मैं चिन्हारी के साथ बने अपने रिश्ते के लिए भी कह सकता हूँ। इस लेख का अंत मैं, मजरूह सुल्तानपुरी द्वारा कहे हुए, उर्दू के शेर से करना चाहूंगा जो चिन्हारी के संग मेरे पुनर्विचार को व्यक्त करता है।

"मैं अकेले ही चला था जानिब-ए-मंज़िल मगर, लोग साथ आते रहे और कारवाँ बनता गया"

<u>लेखक का परिचय</u> - इमरान, सीखने की ललक के साथ भटकता हुआ एक मुसाफिर!

मनचलों की अभिव्यक्ति – चिन्हारी के सदस्यों द्वारा चित्र

चित्रकार का नाम – पूजा यादव

चित्रकार का नाम – पूजा यादव

चित्रकार का नाम – होमेश्वरी सूर्यवंशी

चित्रकार का नाम: थानेश्वरी सूर्यवंशी

मनचलों की मस्ती: चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति

रेणुका यादव

कोरोना महामारी के चलते जो लॉकडाउन हुआ, उसकी अहमियत तो हमे समझ आयी पर घर बैठे-बैठे हम सभी को बहुत बोर लगने लगा था। चिन्हारी की लड़कियों का आपस में मिलना भी तो नहीं हो रहा था। तो ज़िंदगी का रंग ज़रा फीका सा पड़ गया था। फिर एक दिन कृति दीदी का फ़ोन आया। भगवान भला करे फ़ोन बनाने वालों का, इस कोरोना में इसी छोटे से उपकरण ने साथ दिया अपने साथियों से जुड़े रहने के लिए। कृति दीदी से बात हुई तो हमारी बोरियत का झटपट इलाज मिल गया। दीदी बोली कि चिन्हारी की लड़कियाँ घर बैठे भी तो बहुत कुछ कर सकती हैं। जैसे की चित्र बना सकती हैं। कहानियाँ लिख सकती हैं। कवितायें जोड़ सकती हैं, अपने घर वालों के साथ कुछ कुछ गीत गाना भी तो गठ सकती हैं। ज़िंदगी जीने का ज़ज़्बा हो तो तरीके कई निकल पड़ते हैं। कृति दीदी ने बताया कि वह स्वयं भी चित्रकारी कर रही हैं। दीदी के सुझाव सुन मुझे भी लगा की बात तो ठी कही है। दीदी कहती हैं की कला आत्मिकसंतुष्टी और जीर्णोद्धार के अलावा अभिव्यक्ति का भी एक अहम ज़रिया है। तो शायद उनके कहने कि ही देर थी, हम झटपट टूट पड़े अपनी कारस्तानियों में। कुछ लड़कियों ने गाँव के चित्र बनाये, किन्होंने फूल बनाए, कल्पना कि कोई सीमाएं थोड़े ही हैं। जो मन को भाया वही बना डाला। रंग भी अपने मन के ही भर दिए। भला किसी ने देखी है पीले रंग कि गाय, पर सच में होती है पीले रंगों वाली गाय। हमारी कल्पनाओं में बस्ती है। तो बस ऐसे ही मनचले, टेढ़े मेढ़े से, नाचते हुए चित्र बाना डाले हमने। मज़ा आया। बिलकुल भी बोर नहीं लगा।

एक तरफ हम चित्र बना रहे थे और दूसरी तरफ कृति दीदी भी चित्र बना रही थी। जैसे जैसे हम चित्र बना रहे थे दीदी को उनकी तस्वीरें भेज रहे थे। आज कल व्हाट्सप्प पर सब कुछ जल्दी से हो जा रहा है। हमारे चित्रों की तस्वीरें देख, दीदी ने हमे अपने चित्रों की तस्वीरें भी भेजी। दीदी कहती हैं की चित्र, (या फिर हो कोई भी कला), आत्मिक अभिव्यक्ति के साधन हैं। दीदी ने चित्रों की तस्वीरें इसलिए भी भेजी क्यूंकि वह जानना चाहती थी की हम तक उनकी अभिव्यक्ति किस तरह पहुंच पा रही है। वह हमारी प्रतिक्रिया चाहती थी अपने चित्रों पर। इस लेख के साथ हमने उनके द्वारा बनाए हुए कुछ चित्रों पर अपने विचार प्रस्तुत किये गए है

कृति दीदी के यूनिवर्सिटी के कुछ साथी हैं जो कि हमसे मिलने गाँव भी आ जाते हैं कभी कभी। ऐसी ही एक बार अर्पित भैया आये थे हमारे गाँव। दीदी कि एक साथी और हैं जिनका नाम सवी है। उनसे हम कभी मिले नहीं पर दीदी बताती हैं कि सवी 'मनोविज्ञान' में रूचि रखती हैं। हमारे बनाए चित्र दीदी को बहुत पसंद आए तो बोली कि अपने यूनिवर्सिटी वाले साथियों को भी भेजेंगी। जैसा मैंने पहले भी कहा, आज कल व्हाट्सप्प पर सब कुछ हो जा रहा है। मिनटों में हमारे बनाये हुए चित्र दिल्ली में रहने वाले अर्पित और सवी के पास पहुंच गए। उन्होने हमारे सारे चित्र देखे। हर चित्र कि अपनी एक अभिव्यक्ति तो है, हम मनचलों ने कुछ कहना चाहा अपने चित्रों से। पर अपने दर्शक तक हमारी अभिव्यक्ति किस तरह पहुँचती है, उन्हे क्या कहती है और फिर वो क्या समझते हैं, ये जानने वाली बात है। इसके लिए चाहिए कि हम रचें एक संवाद अपने दर्शक के साथ। यह जाने कि हम मनचलों ने जो कहा उसे हमारे दर्शकों ने किस तरह सुना। अर्पित और सवी ने हमारे चित्रों के साथ अपने विचार लिखें हैं। इन विचारों से ये बताया है कि उन्हे चित्र देखकर क्या ख़याल आये। चित्रों को लेकर उनकी प्रतिक्रियाएँ पाठकों के लिए प्रस्तुत हैं। प्रतिक्रियाओं के क्रम में, पहले हमने कृति दीदी के चित्र प्रस्तुत किए हैं और उसके बाद चिन्हारी के बाकी सदस्यों के चित्र प्रस्तुत हैं। हमे आशा है कि निम्नप्रस्तुत चित्र एवं प्रतिक्रियाएँ हमारे पाठकों को पसंद आएं।

भाग-1: स्वर्णिमा द्वारा बनाए हुए चित्रों पर चिन्हारी की किशोरिओं की प्रतिक्रिया

चित्र १: इस चित्र को देख कर मुझे अपनी स्कूल के दिन याद आ गए। उस समय मैं कुछ चौदह साल की थी। उस साल, हमारी क्लास के छात्रों की स्कूल के वरिष्ठ छात्रों से कुछ मुठभेड़ हो गयी था। वरिष्ठ छात्र हमसे नाराज़ थे और हमे सबक सिखना चाहते थे। मौक़ा दिवाली का था। हमारे स्कूल के प्रधानाध्यापक चाहते थे कि दिवाली के त्यौहार पर स्कूल में एक रंगा-रंग सांस्कृतिक कार्यक्रम हो। इस कार्यक्रम के लिए उन्होने वरिष्ठ छात्रों को ज़िम्मेदारिआं दी। जिनमे से एक ज़िम्मेदारी थी रंगोली बनाने की। पर वरिष्ठ छात्र चतुर निकले। उन्होने इस काम को टालने की एक तरकीब सोची। उस दिन हमारी क्लास के छात्र, फर्स्ट हाफ की पढ़ाई समाप्त कर, इधर-उधर निकल गए। अंतराल का समय था तो क्लासमें बहुत कम लोग बैठे थे। वरिष्ठ छात्रों ने मौके का फायदा उठाया। हमारी क्लास में आ धमके। साथ ही हमारे स्कूल की एक अध्यापिका को भी बुला लाए। उन्होने अध्यापिका से निवेदन किया कि रंगोली बनाने की ज़िम्मेदारी हमारी क्लास के बच्चों को दे दी जाए। हमारी क्लास की संख्या वैसे ही कम थी तो बहस करने वाले भी कम ही थे।

अध्यापिका वरिष्ठ छात्रों की बातों में आ गयी और रंगोली बनाने की ज़िम्मेदारी अब हमारे कन्धों पर आ गयी। हमे काम करने से या मेहनत करने से नहीं डरते थे। हम सिर्फ इसलिए घबराए क्योंकि हम लोगों में से किसी को भी रंगोली बनाना नहीं आता था। पर ज़िम्मेदारी तो अब मिल चुकी थी। काम तो करना ही था। अब बात इज़्ज़त पर भी आ गयी थी। अध्यापिका चाहती थी की हम कुछ परंपरागत (ट्रेडिशनल) डिज़ाइन बनाए। अध्यापिका ने वरिष्ठ छात्रों को निर्देश दिया कि वह हमारी मदद करें और हमारा मार्गदर्शन करें। पर यह तो वरिष्ठ छात्रों को भी पता था और हमे भी कि ऐसा कुछ तो बिलकुल नहीं होने वाला था। वरिष्ठ छात्रों ने रंग हमारे हाथ में थमा दिए और वहाँ से निकल पड़े। हम भी कुछ होशियार थे। हमने तरकीब निकाली - 'इंटरनेट'। वहाँ से कुछ ट्रेडिशनल डिज़ाइन निकाले रंगोली के। डिज़ाइन का चयन तो हो गया पर उसे हूबहू ज़मीन पर कैसे उतारना हैं यह नहीं पता था। लडकियां भी हम गिनकर ५ से ६ ही थी। पर हमने काम शुरू किया। कुछ आड़ी टेढ़ी लकीरें खींची। तो वरिष्ठ छात्र आते, हमारी लकीरें देखते और हँसते हँसते चले जाते। बहुत मज़ाक उड़ाया उन लोंगों ने। हमारे इरादे तो तय थे। अब कुछ अच्छी सी रंगली बनाना है। सब लोग बनाने में जुट गए। पूरा दिन बीत गया। शाम होने को आई। हमारे अध्यापक और प्रधानाध्यापक भी आए रंगोली देखने। उन्हे हमारे रंग और डिज़ाइन दोनों पसंद आये। बहुत खुश हो गए सब लोग। सबको बहुत अच्छा लगा, सब लोंगों ने खूब सराहा हमे। कृति दीदी के चित्र को देखकर मुझे रंगोली याद आई। और उससे जुड़े अपने अनुभव याद आ गए।

चित्र २: इस चित्र को देखकर लग रहा है जैसे यह स्वयं 'दुर्गा मा' है। यह अपने भक्तों से इतनी खुश हैं कि उनकी भक्ति देखकर, उनको अपने नव रूपों में दर्शन दे रही हैं। उनको आशीर्वाद दे रही हैं। उनकी आंखो को देखकर लग रहा है कि ममता का भाव बसा है उनमे। और पूरी दुनिया को यह अपनी ममता का आँचल प्रदान कर रही हैं।

भाग-2: चिन्हारी के सदस्यों द्वारा बनाए चित्रों पर अर्पित और सवी की प्रतिक्रिया

यह लेख चिन्हारी की तरफ से एक प्रयोग (एक्सपेरिमेंट) समझा जा सकता है। लॉकडाउन का समय कुछ ऐसा रहा जब लड़कियों के पास स्कूल बंद होने की वजह से समय था। मगर इस वक़्त को हम साथ मिल कर निभा नहीं सकते थे, क्योंकि महामारी के डर से लोग अपने अपने घरों से कम ही निकला करते थे। ऐसे वक़्त में चिन्हारी को कुछ नया सोचने कि ज़रूरत थी, कुछ ऐसा जो लड़कियों को जोड़ कर रखे और उनके समय का अच्छा उपयोग हो। सभी व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए हमने तय किया कि चित्रकारी ऐसी कला है जिसे हम घर बैठ कर सीख सकते हैं। इसी सोच के साथ हमने चित्र बनाना शुरू कर दिया। सुन्दर एवं भावपूर्ण चित्रों के माध्यम से उन्हे एक तरीके से अपनी मनोदशा व्यक्त करने का जरिया भी मिला। इन कलापूर्ण तरीकों से मानो चिन्हारी में भी रंग भर गए। धीरे धीरे जब संक्रमण का डर कम हो गया (जब गाँव के आस पास किसी को भी कोविड नहीं हुआ, लड़कियाँ साथ मिल कर चित्र बनाने लगीं और अपने सभी भावों को एक कलात्मक अभिव्यक्ति देने लगीं। यही वक़्त था जब हमने इस समाचार पत्र के विषय के बारे में सोचा, और यह महसूस किया कि ये चित्र इस प्रकाशन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होने चाहिए। हम यह सोचने लगे कि आखिर इसका रूप क्या होगा और इसी तरह हमने एक एक्सपेरिमेंट करने की सोची। गाँव में बनाये गए कुछ चित्रों को हमने अपने सलाहकार और सहायक अर्पित (जो कला और आदिवासी प्रतिनिधित्व के विषय पर शोध कर रहे हैं) और सवी(जो मनोविश्लेषण की पढ़ाई पूरी कर रही हैं) को भेजा। हमने उनसे आग्रह किया कि वे इन चित्रों के साथ कुछ समय बिताऐं और इस चित्रों को देख कर उनके मन में जो भी विचार आये उन्हें लिखें। साथ ही हमने स्वर्णिमा के बनाए हुए कुछ चित्र, व्हाह्रप्प के माध्यम से, गाँव में युवतियों के पास भेजे और इन चित्रों पर उनकी प्रतिक्रिया साझा करने को कहा। इस प्रतिक्रिया को किसी कड़े फॉर्मेट में नहीं बाँधा। चित्र अगर युवतियों को किसी व्यक्तिगत किस्से या कहानी की याद दिलाते हैं तो उन्हे भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इस तरह की प्रतिक्रियाओं को मनोविश्लेषण की भाषा में एसोसिएशन (association) भी कहा जाता है। इस तरह से, शायद, शहर गाँव और गाँव शहर से बात कर सकेगा। यह एक छोटी कोशिश है, आशा है इन बातों और तरीकों को सोचने में हमें आपका साथ मिलेगा। हमारी इस कोशिश पर हमें अपने विचार ज़रूर बताएं। सवी और अर्पित की प्रतिक्रियाएँ (एवं एसोसिएशन) कुछ इस प्रकार हैं।

चित्र १ (हेमा मंडावी): मुझे सभी चित्रों में से यह एक बहुत सुंदर चित्र लगा। इसमें हेमा हमें बचपन की झलक दिखा रही है। बचपन के माइने शायद उसके लिए अपने गांव और अपनी पहाड़ियों से घिरे हुए नदी के आस पास खेलना रहा हो। इस चित्र की अनोखी बात यह है कि बच्चों की आकृति इसमें, उनका शरीर, चित्र की और आकृतियों की तुलना में काफी बड़ा है। बच्चे अक्सर अपने आप को अपनी सामान्य व्यवस्था से बड़ा समझने की कल्पना करते हैं। यह कल्पना उन्हें ज़िन्दगी में आगे बढ़ने की और अपने मन में अपनी उत्तम छवि बनाए रखने में मदद करती है। इस चित्र को देख कर मुझे मेरा बचपन भी याद आता है।

चित्र २ (पूजा यादव): यह चित्र बहुत अनोखा है। इसमें एक उथल पुथल सी नजर आती है। पानी कहीं, मछली कहीं, मेंढक कहींऔर बकरी कहीं। और बीच में सूरज है। इस उथल पुथल में एक मस्ती सी दिखती है। इस चित्र का केंद्र बकरी है या पानी, नहीं पता। पर बकरी पानी में उड़ सी रही है। इस चित्र का एक कार्टूनी अंदाज़ है जो देखने वाले को टटोलके रख दे। बनाने वाले ने इस चित्र को बड़े मज़े से बनाया है। मेरे मानने में चित्रकार और इस चित्र की कहानी अपने बीच एक राज़ (सीक्रेट) शेयर कर रही है जो दर्शकों के जानने के लिए नहीं है।

चित्र ३ (कविता और सुनीता): यह एक बड़ा सरल सा चित्र दिखता है। आसमान नीला है और पहाड़ भी नीले हैं और इनके बीच में सूरज छुपा हुआ है। ऐसा लगता है कि एक सामान्य सी आकृति सोचकर उसमें बस रंग भर दिए गए हैं। पहाड़ नीले हैं आसमान के साथ, आसमान के समान – मानो आसमान और पहाड़ में कोई फर्क ही नहीं। साथ ही गहरे नीले रंग की घास चित्र के एक कोने में उगती दिखाई दे रही है। चमकता सूरज जो दिखने में भी नटखट है, मानो आसमान पहाड़ों के पीछे से छुपकर देख रहा हो, इस चित्र का मध्य अंश बनकर सामने आता है। यही बात इस चित्र को आकर्षित भी बनाती है, चित्रकार की मन की चंचलता और दृढ़ता हमें दिखाती है।

चित्र ४ (पूजा यादव): इस चित्र का नाम नाव में लड़का (boy in the boat) है पर चित्र में लड़का नाव में (boy in the boat) नहीं है। नाव (boat) तो कहीं और ही है। पर boy boat को पकड़कर ही खड़ा है। शायद इस चित्र के पीछे एक कहानी है जो चित्रकार को ही मालूम है। यहां एक तेजी सी महसूस होती है, वह हवा का प्रभाव है या सूर्य का प्रकाश, क्या पता! ऐसा लग रहा है कि किसी भी समय या तो नाव (boat) उड़ जाएगी या लड़का (boy)। चित्रकार की यह कहानी कुछ तूफ़ानी सी लगती है। बॉयबोट में नहीं है, पर लड़का शायद नाव में बैठना चाहता है। अभी नाव दूर चली जा रही है और उसे खींचना पड़ रहा है। जब मन में भी शांति होगी तो बॉयबोट में होगा और बोट पानी में खूब तैरेगी।

चित्र ५ (पूनम ताम्रकार): "स्वच्छ भारत मिशन, एक कदम स्वच्छता की ओर" यह चित्र गांव के एक आम दिनचर्या का परिचय दे रहा है। बच्चों का स्कूल जाना, किसान का खेत में काम करना और नहाना, धोना आदि। पर जो बात इस चित्र को चिन्हित करती है वह है ऊपर लिखे कुछ शब्द। यह चित्र ये दर्शाता है कि केंद्रीय सरकार के कैंपेन कितनी सरलता से एक गांव के दिनचर्या का पात्र बन जाते हैं। गांव में रहने वालों के अपने पारंपरिक नियम जो भी रहते होंगे, इस चित्र से यही प्रतीत होता है कि कैसे बाहरी नियम जो एक पॉलिटिकल प्रोसेस से प्राप्त होते हैं वह किस तरह दैनिक आदर्श बनकर लोगों की आम ज़िंदगी को प्रभावित करते हैं। आज गाँव के बदलते चेहरे के पीछे शायद यही समझ है। मगर हमें शायद गौर करना चाहिए इस बदलाव पे, कहीं ऐसा ना हो कि गाँव की अच्छाइयाँ भी बदलाव के साथ गुम हो जाएं।

चित्र ६ (रानू यादव): इस चित्र को देखकर मुझे एकांत का अनुभव हुआ। शुरू में यह बहुत ही बेडौल सा चित्र लगा, जिसमें ज़मीन कहीं, पानी कहीं, और सूरज किसी भी दिशा में निकल रहे हैं। पर जिस बात ने मुझे आखिर में सबसे आकर्षित किया, वह था वो गुलाबी झूला। रेनू का यह गुलाबी झूला, उसने क्या कल्पना कर के रचाया होगा? खाली ज़मीन, शीतल नदी, एक प्रकार के सुख का अनुभव करवाते हैं। इस झूले पर झूलती हुई रेनू, नदी को निहारती क्या सपने बुनती होगी? और क्या शायद, यह गुलाबी झूला रेनू का नहीं, पर रेनू को दर्शाता है? थोड़ा सा अलग, थोड़ा सा किनारे, और थोड़ा एकांत मेह्सुस होता है।

चित्र ७ (कविता यादव): पहाड़ की चोटी (क्लिफ टॉप) और एक विशाल वृक्ष एक साथ इस चित्र को गहरा ई दे रहे हैं। हम इस चित्र में गहराई को दो तरह से समझ सकते हैं – पहला, गहरे-गाढ़े रंग का इस्तेमाल और दूसरा, गहराई (जिसे अंग्रेज़ी में 'डेप्थ' कह सकते हैं)। नीचे लोमड़ी जैसा एक जानवर खड़ा है। पेड़, पहाड़ और उसके पास एक लोमड़ी जैसा जानवर मुझे शेर राजा (लायन किंग) फिल्म की याद दिलाता है। जहां जंगल के सदस्य पुरानी परंपराओं को संभालते हैं और वर्तमान में भी उन्हें समझने कि कोशिश करते हैं। चित्र में इस बात की अनिवार्यता है कि प्रकृति सभी बिंदुओं पर अजेय है। नीले और गहरे लाल रंग का उपयोग सूर्यास्त का एहसास देता है, मानो अब हर किसी के घर जाने का वक़्त हो गया हो। सूर्यास्त इस सवाल का भी प्रतीक है कि कल का सूरज किस कहानी के साथ निकलेगा। और क्या लोमड़ी अब भी वहीँ खड़ी रहेगी?

चित्र ८ (हेमा मंडावी):गाँव का जीवन जो दैनिक रूप से होता है, उसके बारे में और उसके स्वभाव के बारे में बहुत कुछ कहती है यह तस्वीर। यह भी एक छवि है जो रोज़मर्रा के माध्यम से बार बार उभर कर सामने आती रहती है। शायद यह दृश्य पूजा (और उसकी सहेलियाँ) हर रोज़ देखती है, महसूस करती है और खुद के लिए एक सपने का निर्माण करती है। इस चित्र ने मुझे यह भी सोचने पर मजबूर कर दिया कि पूजा इस बदलते वक़्त में किस तरह से अपनी जगह बनाती है।

चित्र ९ (चांदनी): चांदनी के हांथों पे छपी मेहँदी को देखने के बाद मुझे बहुत सारी संभावनाओं की याद आ रही है, बहुत सारी संभावनाएं और उनमे बसी आकांक्षाएं; चांदनी की संभावनाएं और आकांक्षाएं क्या होंगी? वो क्या पढ़ना चाहती होगी, क्या बनना चाहती होगी... ये सभी सवाल मेरे मन में आने लगे। हथेली स्केच पर कला और ड्राइंग पैटर्न इतना ही कह रहा है कि हाथ भीहोना चाहता है।

चित्र १० (मंजू): मंजू की पिक्चर देखकर ऐसा लगा जैसे वह काफी खुश है। अपने आप से भी और अपने आस पास के लोगों से भी। इस चित्र से ऐसा लग रहा है जैसे कि मधु किसी से मिलना चाहती है। यह बहुत सक्रिय छवि है। एक बहुत ही वास्तविक खुशि झलकती है। शायद यह ख़ुशी दोस्ती की झलक है।

देविका द्वारा लिखी कहानी: "एक बार की बात है कि एक गाँव मे माँ और बेटे की जोड़ी रहती थी। माँ का बेटा छोटे से बड़ा हो गया। उस लड़के के दोस्त ने उससे थोड़ा सा मज़ाक कर दिया लेकिन वो लड़का मज़ाक को सही समझ कर अपनी माँ के पास पहुंचा। माँ ने अपने बेटे को खाना दे दिया और खाना खा के वो लड़का कुल्हाड़ी लेने चला गया। वो लड़का अपनी माँ के सोने के बाद लौटा। और माँ को नींद में ही बेटे ने सच में मार डाला। अपनी मरी हुई माँ के कलेजे को लेकर वो अपने दोस्त के पास पहुंचा। उसके दोस्त ने कहा की अरे पागल तूने अपनी माँ को ही मार डाला जिसने तुझे बचपन से ले कर अभी तक बड़ा किया। तुमने ऐसा कैसे कर डाला ! लड़के ने माँ के दिल को काट दिया। कटे हुए दिल ने कहा की बेटा तुम्हें कहीं लगा तो नही? शायद इसी लिए उसके दोस्त ने उससे कहा था कि माँ से बड़ा कोई नही होता है। माँ की बातों को हमे कभी भी बुरा नही कहना चाहिए।"

प्रतिक्रिया: देविका के बताए हुए माँ और बेटे के रिश्ते की कहानी में मुझे बहुत सारी परतें दिखाई देती हैं। ये परतें शायद सभी रिश्तों के बारे में कुछ बताती हैं। इस कहानी को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि यह किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखा गयी है जिसने कहानी का कोई हिस्सा महसूस किया है या शायद इसे देखा है। कहानी मानवीय रिश्तों की जटिलता के बारे में है। इसे पढ़ने के बाद मैं अपनी माँ के साथ अपने रिश्ते के बारे में सोचने लगा। माँ के साथ अपनी यादों में पहुंच गया। कहानी ने मेरे भीतर गहरी भावनाओं

को जन्म दिया। यह इसलिए भी था क्योंकि कहानी खुद गहरी भावनाओं से निकल कर मुझ तक पहुँची। मानो लिखने वाले कि किसी याद से निकल कर वह पढने वाले कि किसी याद तक पहुँच गयी।

योगदानकर्ताओं का परिचय - रेणुका यादव - ग्यारहवीं कक्षा की छात्र हैं। रेणुका २०१९ से चिन्हारी का हिस्सा रही हैं। वे पढ़ाई और चित्र कला में रूचि खती हैं। **सवि** - दिल्ली शहर के अम्बेडकर विश्वविद्यालय में छात्रा और शोधकर्ता हैं। उन्हें किताबें पढ़ना और कविताएं लिखना अच्छा लगता है। जब वह काम नहीं कर रही होती हैं तो अपनी बिल्लियों के साथ आराम करती पाई जा सकती हैं। साथ में वह एक मनोचिकित्सकभी हैं। **अर्पित -** अपनी मौजूदा क्षमता में एक फिल्म-निर्माता और एक शिक्षण प्रशिक्षक हैं। उन्होंने विकास अध्ययन और विकास अभ्यास (अम्बेडकर विश्वविद्यालय) में एमए और एमफिल किया है। एमफिल पूरा करने के बाद, उन्होंने दिल्ली के सेंटर फॉरडेवलपमेंटप्रैक्टिस मेंफोर्ड फाउंडेशन-समर्थित परियोजना के लिए सहयोग प्रदान किया है। वे पूर्वी भारत के आदिवासी बेल्ट के आसपास पिछले तीन वर्षों से सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील फिल्में बना रहे हैं। वह अशोका विश्वविद्यालय में शिक्षक के रूप में भी काम कर रहे हैंजहाँ वे'राष्ट्र और घोषणा', और 'राजनीतिक विचारधाराओं का परिचय' पढ़ाते हैं।

Rural communities show just how well they can cope with and overcome a crisis like the unprecedented one brought on by the pandemic and lockdown | Photo Credit: Getty Images

(४) 'अतिथि द्वारा योगदान'

संकत से निकल्ने कि राह - अशिश कोठारी
मेडिकल विशेषज्ञ सुमंतो चेटर्जी महामारी से सम्बंधित साक्षात्कार
- स्वर्णिमा कृति और अमित शेहरावत

यह चित्र आशीष कोठारी द्वारा लिखे गए आर्टिकल 'वाट डस सेल्फ रेलिएंस रियली मीन? अमेजिंग स्टोरीज इमर्ज फ्रॉम इंडिया'स विलेगेस' के साथ 'द हिन्दू' में छापा गया था। **(https://www.thehindu.com/society/what-does-self-reliance-really-mean-amazing-stories-emerge-from-indias-villages/article31756580.ece)**

संकट से निकलने की राह

आशीष कोठारी

डेक्कन डेवलपमेंट सोसायटी (डीडीएस) एक नागरिक संगठन है, जो तेलंगाना के ७५ गाँवों में है। यहां महिला समितियों का गठन किया गया है, जिन्हें संघम कहा जाता है। इन महिलाओं के माध्यम से, जो उनकी जाति के कारण समाज के हाशिये पर हैं (हिन्दू समाज में दलित सबसे ज्यादा उत्पीड़ित हैं), लैंगिंग असमानता है, छोटे किसान हैं, इन सबने मिलकर पिछले 3 दशकों में कृषि क्रांति की है। सूखी खेती (वर्षा आधारित) को पुनर्जीवित किया, पौष्टिक अनाजों की विविध खेती पर जोर दिया, उन्होंने भूमि की उर्वरता, देसी बीज, पानी को बरकरार रखते हुए उत्पादन बढ़ाया, और अन्न स्वराज हासिल किया है। हजारों परिवारों की भुखमरी मिटाई, कुपोषण मिटाया। उन्होंने उनका खुद का मीडिया सेंटर शुरू किया, भारत में पहले सामुदायिक रेडियो का संचालन किया। फिल्म निर्माण केंद्र बनाया। कोनफार्म प्रोजेक्ट संचालित किया जा रहा है, जिसमें हैदराबाद शहर के १०० परिवार जुड़े हैं, जो किसानों की मदद करते हैं। वे खेती में अग्रिम निवेश करते हैं, यानी लागत खर्च देते हैं और बदले में जैविक व विविध अनाज लेते हैं। उनको खेत को देखने और उसमें काम करने का मौका भी होता है।

कोविड के हमले के समय में डीडीएस से जुड़ी महिला किसानों ने खुद की और समुदाय की रक्षा की। इन गाँवों में अब तक कोरोना प्रभावितों का एक भी मामला नहीं आया है। यहां गौरतलब है कि इन्होंने जिला राहत कार्य में १० किलो अनाज प्रति परिवार योगदान किया है। भोजन के लिए १००० गिलास पौष्टिक अनाजों की खिचड़ी दी गई, जिसे ग्रहण करनेवालों में जहीराबाद कस्बे के स्वास्थ्य कर्मी, नगरपालिका के कर्मचारी और पुलिसकर्मी भी शामिल थे। दूसरा उद्धरण गढ़चिरौली, महाराष्ट्र का है, जो आदिवासी बहुल है। यहां पर ९० गांवों की महाग्रामसभा (ग्रामसभा का महासं) है, जो खनन के प्रस्ताव के खिलाफ राज्य और कारपोरेट से लड़ रही है। उन्होंने इस क्षेत्र में एक तरह से स्वशासन की ओर कदम बढ़ाया है। वन अधिकार कानून के तहत् उन्हें सामुदायिक वन अधिकार, वनों के प्रबंधन और उसके उपयोग के अधिकार प्राप्त हुए हैं। सदियों से चले आ रहे जंगलों पर केन्द्रीकृत राज्य नियंत्रण, जिसमें बाहर के ठेकेदार वनोपज से लाभ कमाते थे, की जगह नए वन अधिकार कानून ने ले ली है, जिसमें वे जंगल से वनोपज ले सकते हैं और बेच सकते हैं। इससे जो आय होती है, उसका एक हिस्सा ग्राम विकास निधि में जमा होता है। इस विकास निधि का उपयोग कुकदाले और अन्य गांव कोविड तालाबंदी की स्थिति में कर रहे हैं, विशेषकर भूमिहीन परिवार, और ऐसे लोग जो बाहर खाने-कमाने गए थे, और जिनका रोजगार छिन गया है, ऐसे लोग जिनकी आर्थिक सुरक्षा नहीं है, उन्हें सहारा दिया जा रहा है। समुदाय की भावना से सामूहिक सुरक्षा सुनिश्चित की जा रही है।

स्थानीय अर्थव्यवस्था के सशक्तीकरण से जुड़ा है तीसरा उद्धरण, जो लेख की शुरूआत में है। केरल सरकार के सहयोग से कुदुम्बश्री नामक अभिनव कार्यक्रम वर्ष १९९० से चल रहा है। इस कार्यक्रम से हजारों महिलाओं की गरिमापूर्ण आजीविका, उनके गांव और पड़ोसी गांव में सुरक्षित हुई है। इसकी हर गांव में इकाई है, इसमें ग्रामीण व शासकीय कार्यक्रम के बीच संपर्क बना कर उनमें स्थानीय स्वशासन क्षमता निर्माण किया जाता है। परिणामस्वरूप, गांव में कई उत्पाद बनाए जाते हैं। इसमें घरेलू सामान, कृषि प्रसंस्करण और हस्तशिल्प शामिल हैं। कोविड संकट में कुदुम्बश्री की स्वशासन इकाई ने सुरक्षा उपायों पर जागरूकता पैदा की है, और ऐसे लोगों के लिए सामुदायिक रसोई की व्यवस्था की है, जिन्हें होम कोरोनटीन किया गया है, जो जरूरतमंद हैं उनकी मदद की जा रही है। अप्रैल माह में इस इकाई ने २० लाख मास्क, ५००० लिटर सेनेटाइजर वितरित किए। इसके अलावा, पूरे राज्य में

स्वास्थ्य कर्मियों के लिए विशेष मास्क दिए। निश्चित ही इस सक्रिय पहल से राज्य सरकार को कोविड संकट के दौरान मदद मिली होगी।

इन तीन उदाहरणों के अलावा, भारत में स्थानीय आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन की कई मिसालें हैं, जो खाद्य, आजीविका, पानी, ऊर्जा, स्वच्छता, आवास और अन्य बुनियादी सुविधाओं से जुड़ी हैं। उन्होंने समाज के हाशिये के लोगों को यह सुविधाएं मुहैया कराई हैं। चेन्नई के बाहर कुदम्बक्कम गांव में पूर्व सरपंच एलान्गो रंगासामी ने लघु उद्योग के माध्यम से 150-200 लोगों को रोजगार दिलाया। कोविड के दौरान एलान्गो ने सौर ऊर्जा से संचालित रोगाणुनाशी इकाई तैयार की है जिसे कोई भी समुदाय आसानी से बना सकता है। इसके पहले उन्होंने गांव में तैयार सोलर ग्रिड में मदद की थी जिसे पंखे व बल्ब जलाए जा सकें। राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय समूह गूँज ने इस संकट के समय ४०,००० परिवारों तक राहत पहुंचाई है। उसका उद्देश्य उनके अनुभव से लोगों की आजीविका को फिर से वापस दिलाना है। यह आजीविका वापसी का कार्यक्रम है, इसमें पुनर्निर्माण के कामों के बदले वस्तु विनिमय के माध्यम से गरिमा पूर्ण आजीविका सुनिश्चित करना है।

पश्चिमी भारत के कच्छ क्षेत्र में, उद्यमी नेतृत्व और तकनीकी नवाचार के माध्यम से हथकरघा बुनाई का काम पुनर्जीवित किया गया है। जो युवा रोज़गार की तलाश में फैक्ट्रियों में चले गए थे, वे गांव वापस आ गए, इस काम में लग गए। वे कहते हैं कि यह काम सिर्फ आय के लिए नहीं है, बल्कि घर में परिवार के साथ काम करने का मौका है। उन्हें उनकी सृजनशीलता दिखाने का मौका मिला है। वे खुद इसके मालिक हैं, और सामुदायिक धरोहर को बरकरार रखे हुए हैं। कुल मिलाकर, कच्छ के पूरे काम से सीखा जा सकता है कि कैसे संकट से निपटा जा सकता है। प्रतिबद्ध नागरिक समूह संगठन के सहयोग और कुछ हद तक स्थानीय शासन की मदद से समुदाय ने इसे हासिल किया है। जिससे पीढ़ियों की आजीविका (विशेषकर शिल्प आधारित), विकेन्द्रीकृत जल संचयन, गरिमापूर्ण आवास इत्यादि का काम संभव हुआ है। यह सब कमाल उन्होंने १९९८-२००१ के चक्रवाती तूफान, सूखा और भूकंप के बाद कर दिखाया है।

इन सबके अलावा, और भी बहुत सी शिक्षाप्रद सीख हैं जिनके जरिए कोविड संकट से निकला जा सकता है। विशेषकर समुदायों को सशक्त और लोचदार बनाकर भविष्य में ऐसे संकटों का सामना किया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण, आर्थिक वैश्वीकरण के बीच में दुनिया में कोविड महामारी के कारण लाखों लोग संघर्ष कर रहे हैं, ऐसे समय में स्थानीयकरण की ओर बढ़ना होगा। कोई कारण नहीं है कि बस्तियों के समूह व समुदाय आत्मनिर्भर न बनें, उनकी सभी बुनियादी जरूरतों में। साथ ही व्यापार और व्यापक क्षेत्रों में यात्रा में भी कमी करनी होगी। इतना भी महत्वपूर्ण मूलभूत लोकतंत्र भी है, जिसके तहत सामूहिक रूप से आमने-सामने की स्थिति में निर्णय करने होंगे, जो वहां के लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही निर्वाचित प्रतिनिधियों व नौकरशाहों को जवाबदेह बनाना होगा। इसके बाद सभी तरह के भेदभाव और असमानता को खत्म करना होगा जिसमें लिंगभेद, जातिवाद, रंगभेद शामिल हैं। इन वैकल्पिक पहलों में कई तरह की ज्ञान प्रणालियों का उपयोग, सांस्कृतिक विविधता का सम्मान और प्रकृति से जुड़ाव और सभी तरह के जीव-जगत का सम्मान करना भी शामिल है।

इन सब सिद्धांतों का संदेश बहुत से बुद्धिमान लोगों ने दिया है जिनमें मोहनदास करमचंद गांधी से लेकर ई.एफ. शुमाखर और इवान इलिच जैसे लोग शामिल हैं। ऐसे ही सिंद्धांत दुनिया में आदिवासियों से मिलते हैं। सुमाक- काउसे, बुएन विविर, उबन्तू

और स्वराज की सोच में हैं। सबसे ताजा पहल पारिस्थितिकीय के साथ नारीवाद(इको फेमीनिज्म) और डीग्रोथ है। इस तरह के दुनिया भर में बहुतेरे विकल्प हैं और भारत में इनका सूक्ष्म दर्शन दिखता है।

अब जबकि कुछ नागरिक संगठन और राज्य सरकारें सुन रही हैं, लेकिन भारत की हावी व्यवस्था अब भी सपना देख रही है कि कोविड से पहले जैसी स्वाभाविक स्थिति आएगी या खराब होगी तब भी सत्ता और मुनाफा को और पक्का कर लिया जाएगा। लेकिन प्रगतिशील ताकतों के लिए यह बड़ा और साहसिक कदम होगा, एक अलग रास्ते पर चलने और उसे आगे बढ़ाकर सामाजिक गति प्रदान करने का।

कोविड मानवता पर एक जोरदार तमाचा तो है ही लेकिन इससे भी आगे बढ़कर यह एक मौका है क्रांतिकारी बदलाव का और ताजा वैश्विक संकट के समय अन्यायी और गैरटिकाऊ विकास से अलग चलने का। हमारे पास ऐसे बहुत से साधारण लोग हैं, जो असाधारण काम कर रहे हैं। आपस में एक दूसरे का सहारा बन रहे हैं। रोशनी दे रहे हैं, आवाज दे रहे हैं, हमें सिर्फ उनकी बात सुननी है।

लेखक का परिचय – श्री आशीष कोठारी जी पर्यावरण एवं विकास सम्बंधित विषयों पर विशेष रूप से काम करते हैं। देश के प्रमुख पर्यावरणविदों (environmentalists) के रूप में जाने जाते हैं। वे "कल्पवृक्ष" नामक संस्थान के संस्थापक हैं। अधिक जानकारी के लिए - https://kalpavriksh.org/ourteam/ashish-kothari/ देखें. प्रस्तुत लेख सबसे पहले "The Hindu" में ७ जून २०२० को प्रकाशित हुआ https://www.thehindu.com/society/what-does-self-reliance-really-mean-amazing-stories-emerge-from-indias-villages/article31756580.ece। बाबा मायाराम ने इस लेख का अनुवाद किया है।

मेडिकल विशेषज्ञ संग महामारी से सम्बंधित साक्षात्कार

स्वर्णिमा कृति – अमित शेहरावत

इस साक्षात्कार का उद्देश्य यह है कि लोगों को इस महामारी के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी मिल पाए। हलाकि यह बात स्पष्ट है कि बड़े बड़े शोधकर्ताओं को भी इस महामारी ने मानसिक उधेड़बुन में जकड़ लिया है। इस लिए हम यह नहीं कह सकते कि इस साक्षात्कार में लिखी हर बात बिलकुल सही है। हर दिन इस महामारी के बारे में नई बातें सामने आ रही हैं। डॉ सुमंतो चटर्जी दिल्ली के गोविन्द बल्लभ पंत हॉस्पिटल में न्यूरोलॉजिस्ट हैं। डाक्टर चटर्जी, दिल्ली में कोरोना ग्रस्त मरीज़ों का इलाज कर रहे हैं। अपने ग्रामीण पाठकों तक सही जानकारी पहुंचाने हेतु उनके साथ, टेलीफोन के माध्यम से (२७ जुलाई २०२०), यह साक्षात्कार किया गया। साक्षात्कार के दौरान स्वर्णिमा और डॉ सुमंतो चटर्जी के बीच हुई चर्चा पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

प्रश्न (१): कोविड-19 से होने वाली बीमारी किन कारणों से होती है?

<u>डॉ. सुमंतो चटर्जी:</u> यह जो बीमारी है कोविड-19, यह एक ख़ास तरह के वायरस से फैलती है। इस वायरस को हम कोरोना या सार्स-कोव २ (SARS- CoV 2) के नाम से जानते हैं। यह वायरस संक्रमित व्यक्ति के खांसने या छींकने से फैलता है। संक्रमित व्यक्ति के बलगम, थूक एवं आँखों से निकले हुए पानी के माध्यम से इस वायरस के फैलने की संभावनाएं रहती हैं। संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में आने से वायरस फैल सकता है।

<u>प्रश्न (२):</u> क्या यह संक्रमित व्यक्ति के पसीने से भी फैल सकता है?

<u>डॉ. :</u> हर वह तरीका जिससे कि संक्रमित व्यक्ति के शरीर या बॉडी फ्लूइड (शरीर द्रव) से संपर्क हो, उससे कोविड फैल सकता है।

<u>प्रश्न (३):</u> इस बीमारी के संकेत (symptoms) क्या – क्या हैं?

<u>डॉ. :</u> बीमारी के संकेत आम तौर पर खांसी एवं नजला से शुरू होते हैं। इसके साथ ही सुनने की क्षमता भी कम हो जाती है, स्वाद की क्षमता भी कम हो जाती है। धीरे – धीरे शरीर में दर्द और बुखार भी होता है। अमूमन ७ से १० (7-10) दिन तक संकेत मिल जाते हैं। कभी कभी संक्रमित व्यक्ति को सांस लेने कि दिक्कत भी हो जाती है। ऐसे में संक्रमित व्यक्ति को अस्पताल में भर्ती करवाना ज़रूरी होता है जिससे कि उसकी देखभाल हो सके। ऑक्सीजन एवं वेंटिलेटर के सहयोग की ज़रुरत भी हो सकती है। लेकिन आम तौर पर इस बीमारी का संक्रमण गंभीर रूप नहीं लेता। १० से १४ (10-14) दिनों के बीच संक्रमित व्यक्ति ठीक हो जाता है।

<u>प्रश्न (४):</u> बीमारी होने के बाद कितने दिनों में संक्रमण का पता चलता है? और क्या यह बीमारी संकेत दिखने के पहले भी फैलती है?

<u>डॉ. :</u> इस बीमारी का संक्रमक तेजी से फैलता है! और संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में आने के 2 से 3 दिनों में संकेत मिलने शुरू हो जाते हैं। संकेत कभी कभी बहुत ही माइल्ड या समान्य होते हैं जिन्हे नज़रअंदाज़ किया जा सकता है। पर फिर भी सतर्कता बनाई रखनी चाहिए।

<u>प्रश्न (५):</u> इस साक्षात्कार को ग्रामीण क्षेत्रों में भी प्रकाशित किया जाएगा। हमारे ग्रामीण साथी अपनी जांच कब, कैसे और कहाँ करवा सकते हैं?

<u>डॉ. :</u> संक्रमण की जानकारी के लिए RTPCR एक महत्वपूर्ण जांच है। संकेत दिखने पर लोग अपने निकटतम स्वास्थ्य केंद्रों में जल्द से जल्द पहुंचे। यह सुविधा उपलब्ध है। सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों, दोनों ही जगहों पर, इस जांच की सेवा उपलब्ध है!

<u>प्रश्न (६):</u> बीमारी का इलाज क्या है? क्या घर में रहकर भी इसका इलाज हो सकता है?

<u>डॉ. :</u> जिनके संकेत गंभीर नहीं हैं या जिन्हे गैर संकेत (asymptomatic) संक्रमण है, वो आयुष मंत्रालय के दिए हुए तरीकों (उदहारण - काढ़ा, भाप, गरारे, इत्यादी) को अपना सकते हैं। यह सब करके अपने आप को स्वस्थ रख सकते हैं! अगर इस दौरान कभी भी रोगी को सांस लेने में कठिनाई हो, सांस में भारीपन हो, या एक सांस में २० तक ना गिन पाएं तो फिर उसे अस्पताल में

भर्ती करने कि जरूरत पड़ती है! समान्य स्थिति में हम साँस रोक कर ३०-४० तक आराम से गिन सकते हैं अगर आप स्वस्थ हैं तो, कुछ लोह ६० से ऊपर तक भी गिन सकते हैं! अगर कोई २० से ऊपर नहीं गिन पाए तो खतरे का संकेत है (यह गिनती तेज़ी से कि जनि चाहिए)।

प्रश्न (७): इस दौरान ओक्सिमीटर का क्या काम होता है?

डॉ. : ओक्सिमीटर से हम देखते हैं कि ओक्सिजन की मात्रा कितनी है। आमतौर पर हमारे शरीर में 95% से ऊपर ही रहती है। लगभग 98-99 के स्तर पर यह मात्रा मिलती है। अगर 92 से नीचे की मात्रा मिलती है तो अस्पताल में भर्ती करा देना चाहिए!

प्रश्न (८): आयुष मंत्रालय द्वारा सुझाए हुए उपाय जैसे काढ़ा, गरारे, इत्यादी को निवारक (preventive) उपायों के रूप में भी देखा जा सकता है?

डॉ. : बिल्कुल! इनको लिया जा सकता है! क्योंकि वायरस के विरुद्ध कोई एंटी-वायरस अभी तक हमारे सामने नहीं है। क्योंकि यह एक नई वायरस है इसलिए एंटी-वायरल दवाइयाँ सिर्फ अनुमान के तौर पर ही दी जा रही हैं। हम आशा कर रहे हैं कि ये काम कर जाएँगी। इस बीमारी पर हमारा वैज्ञानिक ज्ञान ठोस नही है। इसलिए गाइडलाइंस (दिशा निर्देशों) के आधार पर ही काम हो रहा है। आयुष मंत्रालय के सुझाव जैसे काड़ा, अश्वगंधा, अदरक, इत्यादी का सेवन प्राथमिक स्तर के इलाज के लिए काफ़ी अच्छा है! और जैसे पहले बोला ये बीमारी माइल्ड से मॉडरेट संकेतों के साथ ही होती है तो इस स्थिति में ये सुझाव काफी उपयुक्त सुझाव हैं।

प्रश्न (९): अगर किसी को माइल्ड या मॉडरेट बीमारी होने के संकेत हैं और ओक्सिमीटर में ऑक्सीजन का स्तर 92 से नीचे का है तो उन्हें क्या करना होगा?

डॉ. : उनको भर्ती करना होगा। यह मॉडरेट संकेत हैं। जो कि भविष्य में गंभीर हो सकते हैं।

प्रश्न (१०): इस बीमारी से जुड़े क्या भ्रांतियां (myth) हैं? कृपया थोड़ा मदद करें इन्हे तोड़ने में!

डॉ. : सबसे ज़रूरी है कि संक्रमित व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार ना किया जाए। इससे उनके मानसिक संतुलन को ठेस पहुँचती है। बहिष्कार इसलिए भी नहीं करना चाहिए क्योंकि मरीज कुछ दिन में ही इस बीमारी से मुक्त हो जाता है। पर अक्सर यह देखने को मिलता है कि बीमारी ठीक हो जाने के बाद भी बहिष्कार समाप्त नहीं होता। सामाजिक बहिष्कार की कोई समय सीमा नहीं होती। किसी भी इंसान को लंबे समय तक नहीं नाकरा जा सकता। तो बीमारी से डरे नहीं, वधानी बरतें, मास्क पहने, हाथ बार बार धोते रहें, दस्ताने नियमित रूप से पहनते रहें। अपने आप को साफ रखें, अगर बाहर जाएं तो लौटने पर कपड़े बदल लें और उन्हे धो लें! अपना बचाव ही इस बीमारी को हराने का सबसे बड़ा उपाय है।

प्रश्न (११): अब यह बीमारी बड़े शहरों से निकलकर छोटे शहरों में पहुँची है और अब छोटे शहरों में संक्रमण की संख्या बढ़ती नज़र आ रही है। पर यह तय नही है कि संक्रमण सच में बढ़ा है या टेस्टिंग बढ़ी है जिसकी वजह से संक्रमण की संख्या सामने आ रही है। मीडिया के समाचारों में कई तरह कि बातें उठ रही हैं। एक बात यह भी है कि जगह के हिसाब से बीमारी अपना रूप बदल रही है। क्या यह सच है? क्या छोटे शहरों और गांवों में इस बीमारी की प्रवृत्ति अलग है?

डॉ. : मूलभूत सुविधा और जागरूकता बहुत महत्वपूर्ण है। जैसे कि स्वास्थ्य संस्थानों का उपलब्ध होना और ठीक रूप से उनका संचालन होना। ऑक्सीजन की उलब्धता, डॉक्टर और नर्स की उपलब्धता, ये सब होना चाहिए। इसके साथ है जागरूकता। इस तरीके से आप अपने आप को और समाज को इस वायरस से अलग रख सकते हैं।

प्रश्न (१२): घर का कोई सदस्य संक्रमित हो जाए तो बाकी लोग किस तरह मदद करें?

डॉ. : संक्रमित व्यक्ति को संगरोध (quarantine) करा देना काफी नही होगा। उनकी देखभाल भी ज़रूरी है। मास्क एवं फेस शील्ड पहनकर आप सेवा करोगे तो कोई खतरा नही है। जैसे अस्पताल में नर्स सेवा करती है वैसे आप भी कर सकते हो। मरीज का वाल्व मास्क नही पहनना चाहिए। संक्रमण का खतरा रहता है।

प्रश्न (१३): आप अपनी तरफ से और कुछ बताना चाहेंगे?

डॉ.: हाँ। जहाँ पर सामूहिक गोष्ठी होती है वहाँ पर ख़ास रूप से सावधानी रखना ज़रूरी है। चाहे वह गाँव हो या शहर।

नोट: इस साक्षात्कार के अनुलेखन की ज़िम्मेदारी अमित शेहरावत ने निभाई है। अमित, अम्बेडकर विश्वविद्यालय के साथ MPhil शोधक के रूप में जुड़े हुए हैं। और छत्तीसगढ़ के जिले धमतरी में स्तिथ नगरी ब्लॉक के गाँव डोकाल में शोध कार्य कर रहे हैं।

किसी भी नए काम को शुरू करने पर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। पर उससे भी ज्यादा चुनौतीपूर्ण होता है उस काम को ज़िन्दादिली के साथ आगे बढ़ाना। चिन्हारी के सदस्यों ने इन चुनौतियों के साथ अपना रिश्ता निभाया है, अपने सदस्यों के अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए चिन्हारी हर्षित है। इस ख़ुशी की एक बड़ी वजह छत्तीसगढ़ के गाँव में बसे हमारे ग्रामीण साथी हैं। जो हमें संगठित होने के लिए प्रेरित करते हैं। डोकाल, मार्दापोटी, बगरूमनाला, बनोली, असुल्खार आदि से हमारे अभिभावक एवं परिवारजन हमें अच्छे और बुरे समय में अपने साथ का भरोसा देते हैं। हम उनके बहुत आभारी हैं। प्रोफ़ेसर अनूप धर एवं डॉ. इमरान अमीन के मार्गदर्शन से चिन्हारी का सृजन हुआ। परिकल्पना से वास्तविकता के इस सफर में आपका योगदान हमारे लिए अतिप्रिय है । चिन्हारी के इस सफ़र में अंबेडकर यूनिवर्सिटी के सेंटर फॉर डेवलपमेंट प्रैक्टिस के शोधको (भव्या, गुरप्रीत, अनुभा, विजेता, अर्पित, आशुतोष, प्रतीक, सवी एवं हमारे अन्य साथी जन) से हमे आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा मिलती है। आपसे, हमें इस काम को सोच पाने की समझ भी मिलती है। चिन्हारी के मुश्किल वक़्त में उसका साथ देने के लिए धन्यवाद । 'अभिव्यक्ति' के इस तीसरे अंक के लिए चिन्हारी कुछ खास लोगों के प्रति अपना आभार व्यक्त करती है - नीरज कपूर और सौरभ चौधरी। आपके सहयोग से इस समाचार पत्र को एक बेहतर रूप मिला है। चिन्हारी के प्रति आपके रुझान के लिए हम धन्य हैं। सुधार की इस प्रक्रिया में लोकेश साहू का योगदान बहुत मददगार रहा है। इस अंक में अतिथि द्वारा योगदान के लिए हम आशीष कोठारी एवं डॉ. सुमंतो चटर्जी को धन्यवाद प्रकट करते हैं। डॉक्टर चैटर्जी संग हुए साक्षात्कार के अनुलेखन के लिए हम अमित शेहरावत के आभारी हैं। साथ ही हम प्रदान के कार्यकर्ता मसरूर अहमद और अजीत गौतम का धन्यवाद करना चाहेंगे जिनसे हमें मार्गदर्शन मिलता है और जिन्होंने हमें ग्राम झुझ्राकसा से जोड़ा।

हमें आशा है कि हमारा संगठन छत्तीसगढ़ के युवतियों एवं युवकों तक पहुंच पाएगा और उन्हें साथ जोड़ पाएगा।

चिन्हारी : द यंग इंडिया

अभिव्यक्ति

३१ अक्टूबर २०२० चिन्हारी के लिए एक बड़ा दिन रहा। इस दिन चिन्हारी को अपने काम के बारे में दुनिया को बताने का मौका मिला। इस अवसर के लिए हम विकल्प संगम का बहुत धन्यवाद करते हैं। चिन्हारी उन सभी का आभारी है जिन्होंने किसी भी तरह से हमारी मदद कि है, साथ दिया है या होसला अफजाई कि है। आपके बिना हम कभी आगे नहीं बढ़ पाते। अगर आप ३१ अकटुबर २०२० के दिन हमारे साथ नहीं जुड़ पाए तो विकल्प संगम के फेसबुक पेज पर या यू-ट्यूब पर इस चर्चा को ज़रूर सुने।